श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय का २२५ वां पुष्प

अध्यात्मयोगी राजस्थानकेसरी गुरुदेव

श्री पुष्कर मुनि जी महाराज की

७४ वी जन्म तिथि के पावन उपलक्ष्य मे

श्रुत व संयम के संगम

प्रज्ञा प्रदीप श्री पुष्कर मुनि

[व्यक्तित्व और कृतित्व]

लेखक— श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

श्रीचन्द सुराना के निर्देशन में—एन के० प्रिन्टर्स, आगरा-३ मे मुद्रित
वि० सं० २०४० आश्विन, १९८३ अक्टूबर

प्रकाशक . श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थाल, शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राज०)
मूल्य . दस रुपया मात्र

प्रकाशकीय-प्रकाश

प्रबुद्ध पाठकों के पाणि-पद्मो में 'उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिः व्यक्तित्व एवं कृतित्व" ग्रन्थ रत्न समर्पित करते हुए हृदय आनन्द विभोर है। उपाध्याय श्री जी का तेजस्वी व्यक्तित्व और उर्जस्वल कृतित्व जन-जन के लिए प्रेरणा-दायक है। वह सहस्र रश्मि सूर्य की चमचमाती किरणो की तरह स्वयं आलोकित हैं और दूसरो को भी आलोक प्रदान करने में सक्षम है। यही कारण है कि वे जन-जन के लिए वन्दनीय है—अभिनन्दनीय हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री के विराट व्यक्तित्व को और अनुपम कृतित्व को शब्दो के संकीर्ण घेरे में आबद्ध करना कठिन ही नही, अपितु कठिनतर है। क्या कभी विराट सागर को नन्ही गगरिया में बन्द किया जा सकता है! असीम को ससीम शब्द कब बाँधने मे समर्थ रहे हैं तथापि एक प्रयास है और वह प्रयास किया है उपाध्याय श्री के प्रधान अन्तेवासी श्री देवेन्द्र मुनि जी ने। उन्होने सद्गुरुदेव श्री के व्यक्तित्व और कृतित्व को सक्षिप्त और सार-गर्भित शब्दो में प्रस्तुत किया है। यह एक ज्वलन्त सत्य है कि गुरु के विचार और आचार का प्रतिनिधित्व एक सुयोग्य शिष्य करता है उतना अन्य व्यक्ति नही। मुनिश्री ने गुरुदेव श्री के जीवन को ही नही, किन्तु कृतित्व को भी प्रस्तुत ग्रन्थ में उजागर करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नही अपितु दृढ-विश्वास है कि लुभावना व्यक्तित्व और कृतित्व प्रत्येक सहृदय-सरोवर में प्रसन्नता की उच्छल तरंगे तरंगित करेगा।

सामान्य व्यक्ति के जीवन मे और एक विशिष्ट व्यक्ति के जीवन में बडा अन्तर होता है। सामान्य व्यक्ति का जीवन 'स्व' तक सीमित रहता है वह लूण-तेल-लकडी की समस्या के समाधान में ही उलझा रहता है किन्तु विशिष्ट व्यक्ति के जीवन मे यह विशेषता होती है कि स्वकल्याण के साथ पर कल्याण की भावना अगडाइयाँ लेती हैं। उसके जीवन के कण-कण में

और मन के अणु-अणु में अनन्त करुणा व्याप्त होती है जिससे उसका जीवन दूसरो के लिए प्रबल प्रेरणा प्रदान करता है। वह पारस-पुरुष होता है। उसके सम्पर्क मे आकर मोह-माया से राग-द्वेष से ग्रसित पतित से पतित जीवन भी पावन बन जाता है। गुरुदेव श्री के सानिध्य मे आकर अनेको व्यक्तियो ने अपने जीवन को पावन बनाया है। चौदह वर्ष की लघु वय मे उन्होने साधना के कठोर कटकाकीर्ण मार्ग पर अपने मुस्तैदी कदम बढाये। बिना अटके बिना भटके निर्मल सरिता की सरस धारा की तरह निरंतर आगे बढते रहे और आज भी उसी मस्ती के साथ गजराज की तरह झूमते हुए आगे बढ रहे हैं, यही उनके जीवन की सफलता का मूल मत्र है।

प्रस्तुत ग्रन्थ रत्न की एक हजार प्रतियो के प्रकाशन के लिए अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है श्री शान्तिलाल जी तलेसरा से। श्री शान्तिलाल जी तलेसरा श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय पदराडा के मन्त्री भी रहे हैं। पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य निष्ठावान और कर्मठ कार्यकर्त्ता भी हैं। उन्होने अपने पूज्य पिता श्री शिवलाल जी की पावन-पुण्य स्मृति मे ग्रन्थ का मुद्रण करवाया है, साथ ही श्रीयुत वेणीचन्द जी, चुन्नीलाल जी तलेसरा का भी दो सौ पुस्तको के प्रकाशन के लिए अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है। श्रीमान चुन्नीलाल जी सा० और उनके सुपुत्रो की व परिवार की अपार भक्ति भावना है, हम उदार हृदयी महानुभावो का हृदय से आभार व्यक्त करते है। भविष्य मे भी इनका सतत सहयोग प्राप्त होता रहेगा यही मगल कामना है।

मुद्रण कला की दृष्टि से ग्रन्थ को सर्वाधिक सुन्दर बनाने का श्रेय स्नेहमूर्ति श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' को है। वे हमारे निकटतम सहयोगी है। ज्ञात व अज्ञात रूप मे जिन सज्जनो का सहयोग हमे प्राप्त हुआ है उन सभी के प्रति हम हृदय से आभारी हैं।

मत्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

उदयपुर

□ □

अपनी बात

सन्त तत्व ने अपनी अलौकिक प्रताप पूर्ण प्रतिभा और ऊर्जस्वल व्यक्तित्व के द्वारा जिस प्रशस्त पथ का निर्माण किया है उसका सार्वकालिक महत्व है क्योकि सन्त धर्म का मूर्तिमान रूप है 'सन्तो हि मूर्तिमान्धर्मः' सन्त धर्म के व्याख्याकार ही नही, स्वयं एक व्याख्या है। सन्त का जीवन धर्म का जीता जागता स्वरूप है, अतः धर्म प्राण भारतीय संस्कृति का शीर्ष पुरुष सन्त है। सन्त के चरणो का प्रभाव जिधर मुड़ जाता है वहाँ का जन-जीवन धर्म से सरस बन जाता है। मानवता की हरियाली लहलहाने लगती है, साधना के सरस सुमन पुलक उठते हैं।

सन्त एक व्यक्ति नही, धर्म का, सदाचार का, सत्य, अहिंसा, विश्व प्रेम और विश्व मानवता का एक पावन प्रतिष्ठान है। अति निगूढ़ मानवीय शक्तियो का उद्घाटक सन्त है। इसलिए हमारा आदर्श है—सन्त, आराध्य है—सन्त, वन्दनीय और अभिनन्दनीय है—सन्त।

सूर्य का धर्म है—प्रकाश देना, कण-कण को जीवनदायी ऊष्मा प्रदान करना। जल का धर्म है—जीव मात्र को शीतलता से अनुप्रीणित करना। धरती का धर्म है—धारण करना और आकाश का धर्म है—आश्रय देना। इसी तरह सन्त का धर्म है—जीव मात्र को उसके स्वरूप का बोध कराना, अनन्त सुप्त शक्तियों को जागृत करना, आत्मा को परमात्मा, जीव को शिव के स्वरूप में प्रतिष्ठित होने का मार्ग दिखाना। सन्त का असीम उपकार है मानव संस्कृति पर।

अध्यात्म योगी राजस्थान केसरी उपाध्याय श्रद्धेय सद्गुरुदेव श्री पुष्कर मुनि जी महाराज का व्यक्तित्व फूलों के गुलदस्ते की भाँति विभिन्न गुणों की सौरभ से सुरभित है। वे एक ओर उच्चकोटि के विद्वान् है तो दूसरी ओर पहुँचे हुए साधक भी है। ज्ञान की गरिमा और साधना की महिमा से व्यक्तित्व के दोनो छोर कसे हुए से हैं। उनकी अद्भुत प्रभावशाली वक्तृत्व कला हजारो-हजार श्रोताओ का हृदय क्षण मात्र में आन्दोलित-परिवर्तित

कर सकती है तो उनका ध्यान-मौन साधना युक्त एक विरल संकेत अपार श्रद्धालु वर्ग को सर्वस्व न्यौच्छावर करने को आतुर भी कर सकता है। उनमें एक साथ अनेक विरोधी गुण देखकर आश्चर्य भी होता है। विनम्रता के साथ सिद्धान्तनिष्ठा और आचार-दृढता, मधुरता के साथ अनुशासन की कठोरता, सरलता और कोमलता के साथ उत्कृष्ट तपःसाधना, जप-योग एवं ध्यान योग की अन्त.श्रावित अमृत साधना, वास्तव मे ही बडी विचित्र आश्चर्यजनक तथा मन को सहसा प्रभावित करती है।

योगी अन्तर्ज्ञानी तो होते हैं किन्तु शास्त्र ज्ञानी होना एक विरलता है। साधक कठोर आत्म निग्रही तो होते है पर कुशल प्रशासक होना एक दुर्लभ विशेषता है। तपस्वी तथा ध्यानी वचनसिद्ध तो होते है, पर कलमसिद्ध होना एक अद्भुतता है। श्रद्धेय गुरुदेवश्री एक ओर जहाँ जगत प्रपच से विरत निस्पृह श्रमण हैं, तो दूसरी ओर ललित-काव्य-कला के सर्जक कवि व लेखक भी है। इस प्रकार की विशेषताएँ और विलक्षणताएँ इस इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व को जहाँ आकर्षण केन्द्र बनाती है, वही श्रद्धा-भाजन भी। इस श्रद्धा-भक्ति व अन्तर के आकर्षण ने मुझे विवश कर दिया, अन्त.स्फूर्त श्रद्धा की व्यजना करने को। "श्रु त व संयम के सगम-प्रज्ञाप्रदीप श्रीपुष्कर मुनि व्यक्तित्व और कृतित्व' ग्रन्थ उसी श्रद्धा की व्यजना की सहज फलश्रु ति है।

चिर काल से अन्तर्मानस मे यह विचार उद्बुद्ध हो रहे थे कि पूज्य गुरुदेवश्री के सम्बन्ध में एक जनोपयोगी सक्षिप्त जीवनी लिखूँ पर अन्यान्य ग्रन्थो के लेखन व सम्पादन मे व्यस्त होने के कारण इच्छा पूर्ण न हो सकी। साथ ही मन मे यह भी विचार था कि मैं पूरी ईमानदारी के साथ जीवनवृत्त लिख सकूँगा या नही? क्योकि पूज्य गुरुदेवश्री का जोवन ऐसा जीवन है जो प्रतिपल-प्रतिक्षण अपने आपको पाने के लिए ललक रहा है। वे एक विकासो-न्मुख अध्यात्म-पुरुष हैं। उनके वेगवान जीवन को शब्दो मे बाँधना कठिन ही नही—कठिनतर है। मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय तो प्रबुद्ध पाठक ही दे सकेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री का जागतिक व्यक्तित्व किसी परमपरित् धातु से निर्मित नही है, पर जिस धातु से निर्मित है—वह खरी है, और काल-सह्य है। वे किसी समाज और परम्परा तक ही सीमित नही हैं अपितु खुले मन-मस्तिष्क के श्रमण हैं। मानवता के प्रति उन्हे प्यार है और उसी के उत्थान के लिए वे सतत् प्रयासशील हैं। भारत के विविध अचलो मे आपने पदयात्राएँ

की हैं; मजदूरो से मिले, किसानो से मिले, सामान्य व्यक्ति से लेकर विशिष्ट राजनीतिज्ञ भी आपके सम्पर्क मे आये है और आपके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए हैं। मैंने यथाशक्ति यही प्रयास किया है कि संक्षेप में व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित सारे पहलु आ जाये। जिससे पाठक इसे पढ़कर जीवन निर्माण की दिशा में कदम बढ़ा सकें।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन में श्री रमेश मुनि, श्रीराजेन्द्र मुनि, श्रीदिनेश मुनि, श्रीनरेश मुनि प्रभृति मुनि मण्डल की सेवा सुश्रुषा भी विस्मृत नही की जा सकती तथा महासती परम विदुषी कुसुमवतीजी का तथा ज्येष्ठ भगिनी परम विदुषी महासती पुष्पावतीजी की प्रेरणा भी ग्रन्थ के लिए सम्बल रूप में रही है। ज्ञात व अज्ञात रूप में जिन सज्जनो का सहयोग मिला है उनकी मधुर स्मृति स्मृति आकाश में सदैव चमकती रहेगी।

जैन स्थानक, —देवेन्द्र मुनि शास्त्री
मदन गंज, किशनगढ़

□□

योग के प्रतीक बनाम प्रतीकात्मक योग

अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनि

योग की अव तक जितनी व्याख्याएँ हुई है उनमे शायद सर्वाधिक व्यापक सार्थक व्याख्या गीता का यह सूक्त है—

योगः कर्मसु कौशलम्

कर्म मे कुशलता योग है।

क्रिया एव कर्म, एक प्रवृत्ति है किन्तु उसमे जब कुशलता/दक्षता/निष्ठा—घुल मिल जाती है तव वह योग/कर्मयोग बन जाता है।

इसी प्रकार ज्ञान भी स्वय मे योग नही है, न भक्ति ही स्वय कोई योग है, किन्तु इनमें कुशलता, ध्येय की निष्ठा, उदात्तता का मिलन इन्हे योग बना देता है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, तीनो का मिलन है अध्यात्म योग!

श्री पुष्कर मुनि जी को 'अध्यात्मयोगी' कहने, समझने के साथ ही मैं उनको त्रियोग सपन्न देखता हूँ और इसीलिए उनको 'अध्यात्मयोगी' मानता हूँ।

उनकी भक्ति में सघनता है, एकनिष्ठता है तो ज्ञान का आलोक भी है, और उनके विशद ज्ञान में भक्ति की अजस्रधारा सदा प्रवहमान है। वे जव-जब जप, ध्यान या पाठ में लीन होते हैं तो 'भक्त'/साधक/ या योगी प्रतीत होते है किन्तु उनके अन्तर में ज्ञान का प्रदीप जगमगाता रहता है। जव-जव वे साहित्य-सर्जना प्रवचन या तत्वचर्चा की ज्ञानधारा में सलग्न देखे जाते हैं तो यदि भीतर झाक कर देख सकें तो अनुभव होगा, भक्ति की एक शीतल धारा में अन्त करण गहरा डूबा हुआ/निमज्जित है।

कुशलता/निष्ठा तो उनकी सहज वृत्ति है, चाहे ज्ञान मे प्रवृत्त हो, या भक्ति में निमग्न। उनकी हर वृत्ति प्रवृत्ति सचाई/निष्ठा व सुदक्षता लिये होती है।

प्रस्तुत पुस्तक मे गुरुदेव श्री के विद्वान शिष्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने उनके 'अध्यात्म योगी' स्वरूप को उजागर करते हुए व्यक्तित्व का समग्र दर्शन प्रस्तुत कर दिया है।

व्यक्ति जल की तरह ससीम होता है, किन्तु व्यक्तित्व जलधि (समुद्र) की तरह असीम। व्यक्ति देश, काल की सीमाओ मे बँधा/बँटा रहता है, किन्तु व्यक्तित्व देश, काल की सीमाओ से मुक्त/अविभक्त/असीम कालजयी होता है। व्यक्तित्व फूलो का एक गुलदस्ता है जिसमे अनेक रग, अनेक गध, अनेक रस—एक सूत्र मे बँधे रहते हैं और उन सबकी सम्मिलित रूप-गध-रस-अनुभूति से एक अनिर्वचनीय रमणीयता/मनोहरता व्यक्त होती है।

श्री पुष्कर मुनि जी एक व्यक्ति नही, एक व्यक्तित्व है। और यह जितना सघन, सुदक्ष, सुनिष्ठ है, उतना ही व्यापक, असीम और अनिर्वचनीय है। प्रत्यक्ष अनुभूति की है, वे एक योगी हैं, ध्यानी है, जपनिष्ठ साधक हैं, और यह तो साक्षात देख ही रहा हूँ—कि वे ओजस्वी प्रवक्ता हैं, उनकी वाणी मे भक्ति और ज्ञान की गूँज है, उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। वे सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओ के अधिकारी विद्वान हैं। जैन आगम से लेकर वेद, उपनिषद्, गीता और मनुस्मृति के अगणित श्लोक भी उन्हे कण्ठस्थ हैं। यह आश्चर्य लगता है कि एक ही व्यक्ति कवि भी, लेखक भी, साधक भी, भक्त भी, वक्ता भी, योगी और समाजनेता भी। पर है यह सत्य। इसलिए उनके व्यक्तित्व की सीमाएँ अबूझ हैं, अगम्य हैं।

श्री देवेन्द्र मुनि जी जैसे समर्थ साहित्यशिल्पी ने गुरुदेव के व्यापक विराट व्यक्तित्व के विविध पक्षो को नापने/परखने/उद्घाटित करने का एक साहसिक प्रयत्न किया है, यह उन्ही के बलबूते की बात है।

पुस्तक के शीर्षक मे—'श्रुत व सयम के सगम' विशेषण लगा है। गीता की भाषा मे यही ज्ञानयोग व कर्मयोग है, जैन दर्शन इसे ही 'श्रुतसम्पन्न' (सुयसम्पन्न) चारित्रसम्पन्न (चरित्तसम्पन्न) (ज्ञान-क्रिया युक्त) कहता है। जीवन के यही दो पक्ष हैं। आज की भाषा मे भक्ति और शक्ति का यह मिलन है। भारतीय सस्कृति भक्ति और शक्ति के मिलन की सस्कृति है। भक्ति-विहीन, शक्ति—भयंकर व बीभत्स होती है तो शक्ति-विहीन-भक्ति—दीन व दयनीय। भक्ति-शक्ति का सुयोग/सयोग ही योग है। श्री पुष्कर मुनि जी के व्यक्तित्व के इन दोनो मधुर व निर्मल पक्षो पर प्रस्तुत पुस्तक मे गहरा पारदर्शी विवेचन है/समीक्षण हैं।

'प्रज्ञा-प्रदीप' विशेषण भी अपने आपमे बडा सार्थक । सटीक है । अध्यात्म क्षेत्र मे बुद्धि को नही प्रज्ञा को महत्व दिया गया है । बुद्धि से अहंकार जन्मता है किन्तु प्रज्ञा से आत्मबोध की निष्पत्ति होती है । सस्कृत के एक मनीषी का कथन याद आता है—

अहकारो धिय ब्रूते नून सुप्तं प्रवोधय ।
उदिते परमानन्दे नाऽहं न त्वं न वै जगत् !

अहकार ने बुद्धि से कहा—वहन ! तुम इस सुप्त प्रज्ञा—आत्मवोध (स्वरूपानुभूति) को जगाने का प्रयत्न मत करो,

क्यो ?—बुद्धि ने पूछा !

अहकार ने उत्तर दिया—यदि आत्मवोध जग गया, तो फिर न मैं टिकूंगा, न तुम और न यह जगत् (ममत्व) ही रहेगा ।

तो प्रज्ञा—आत्मवोध को जगाती है, इसलिए प्रज्ञा-प्रदीप विशेषण भी वहुत सार्थक है । उपाध्याय श्री जी की सु जागृत अन्तर-चेतना रश्मियो को स्पर्श करने का एक नम्र प्रयास है ।

उपाध्याय श्री जी का जीवन वट वृक्ष की तरह है, जितना वाहर मे विशाल व व्यापक है, उतना ही भीतर मे (जड) मे गहरा लीन है । उसमे प्रसरणशीलता, सघनता (छाया—आश्रयदातृत्व) सफलता—फलवत्ता, कृतार्थता और सरसता का मधुर सामजस्य है ।
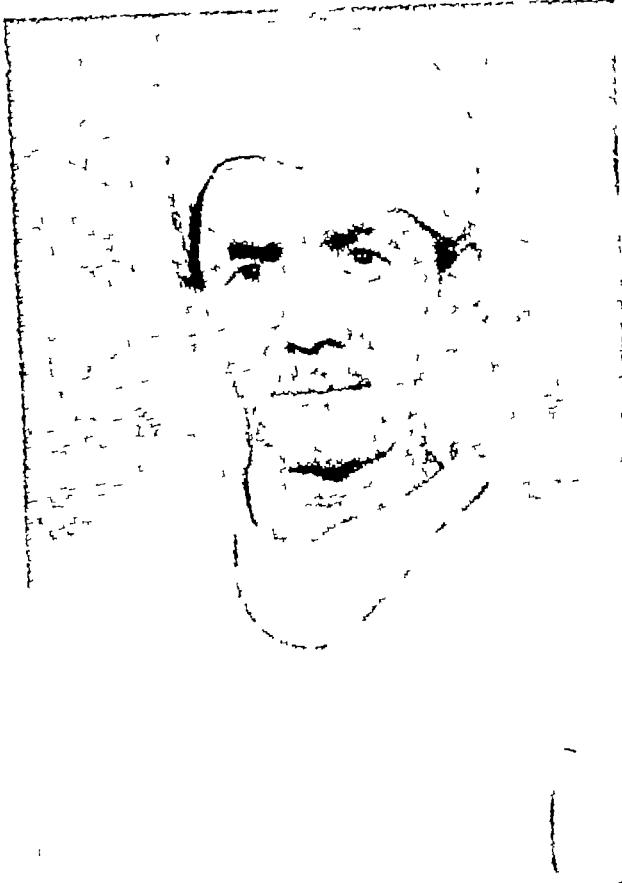
हम सब का सौभाग्य है कि ऐसे विरल व्यक्तित्व के धनी एक श्रमण श्रेष्ठ का सान्निध्य हमे प्राप्त हुआ है जो जीवन मे सदा ही वसन्ती वहार वनकर मुस्कराता रहा, औरो को भी मुस्कराहट देता रहा और आशा है युग-युग तक देता रहेगा ।

मूर्धन्य मनीषी श्री देवेन्द्र मुनि जी ने वडी तटस्थता और व्यापकता के साथ गुरुदेव श्री के बहुआयामी व्यक्तित्व का अकन किया है । पाठक इसे पढकर स्वय सात्विक तोष अनुभव करेंगे । इत्यलम्

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

उदारमना परमगुरुभक्त

स्व० श्री शिवलाल जी धनराज जी तलेसरा

(एक परिचय)

भारत के तत्वदर्शी महर्षियो ने जीवन के सम्बन्ध में जितना चिन्तन किया है, उतना अन्य किसी विषय पर नही। विभिन्न दृष्टियो से जीवन को परिभाषित कर, सत्य-शिवं-सुन्दरम् की कसौटी पर कसने का प्रयत्न किया है। जीवन वह है, जिसमे सत्य की सौरभ हो, सरलता का सौन्दर्य हो और स्नेह का शिवं हो। जिस जीवन में यह त्रिवेणी प्रवाहित होती है उसका जीवन महान जीवन होता है।

जब हम भारतीय चिन्तको की प्रस्तुत कसौटी पर परम गुरुभक्त स्वर्गीय श्री शिवलाल जी धनराज जी तलेसरा का जीवन परखते/निरखते है तो उनका जीवन सत्य-शिवं-सुन्दरम् का एक अनूठा संगम प्रतीत होता है। वे प्रकृति से सरल, हृदय से उदार, मन से विशाल और स्वभाव से मधुर थे। आपके दो सुपुत्र है—श्री शान्तीलाल जी और श्री लक्ष्मीलाल जी तथा दो सुपुत्रिया है—देवकुमारी और कमलाकुमारी।

दोनो ही भाइयों मे राम और लक्ष्मण की तरह परस्पर प्रीति है। श्री शान्तीलाल जी एक सुलझे हुए कर्मठ कार्यकर्त्ता है। आपने अपने प्रबल पुरुषार्थ और प्रतिभा से व्यापार के क्षेत्र मे चार चाद लगाये है। आपके प्रबल प्रयास का ही सुपरिणाम है—सूरत में उनके अनेक प्रतिष्ठानो की सफलता। आपके प्रतिष्ठानो के नाम इस प्रकार है—१-अमर तारा कार्पोरेशन, २-अमर - शान्ती - सिल्क मिल्स और ३-अमर तारा सिण्डिकेट।

सम्पर्क सूत्र है—एच०-३०३६, सूरत टैक्सटाइल्स मार्केट, सूरत (गुजरात)।

इसी प्रकार श्री लक्ष्मीलाल जी भी सरलमना सज्जन है। उपरोक्त प्रतिष्ठानो मे खेतरमल जी दोपी और चम्पालाल जी सुराणा भी सहयोगी भागीदार है। दोनो ही नवयुवक है।

श्रीमान शिवलाल जी साहब राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के एक निष्ठावान श्रावक थे। प्रतिवर्ष गुरुदेव श्री के दर्शन का लाभ लेते थे। उनकी बहिन साध्वी है जो महासती वल्लभकुँवर जी के नाम से विश्रुत है। आप श्री की धर्मपत्नी धर्मानुरागिनी नवल बाई है। शिवलाल जी का अपने भरे-पूरे परिवार को छोडकर स्वर्गवास हो गया है। पूज्य पिताश्री की पावन-पुण्य स्मृति से उनके सुपुत्रो के द्वारा 'श्रुत व संयम के संगम : प्रज्ञा प्रदीप श्री पुष्कर मुनि' ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ उदारतापूर्वक अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है तदर्थ हम आभारी हैं।

चुन्नीलाल धर्मावत

कोषाध्यक्ष

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय,

उदयपुर।

क्या.... **कहां....**

श्रुत व संयम के संगम

प्रज्ञा - प्रदीप श्री पुष्कर मुनि

[व्यक्तित्व और कृतित्व]

१ साक्षात्कार : एक युग पुरुष का

प्रत्येक युग मे कुछ ऐसे शिष्ट-विशिष्ट व्यक्तियो का जन्म होता रहा है जिन्होने अपनी महानता, दिव्यता, और भव्यता से जन-जन के अन्तर्मानस को अभिनव आलोक से आलोकित किया है। जो समाज की विकृति को नष्ट कर उसे संस्कृति की ओर बढने के लिए उत्प्रेरित करते रहे हैं। अपने युग के गले-सडे, जीर्ण-शीर्ण विचार व आचार मे अभिनव क्रान्ति का प्राण-संचार करते रहे हैं। उनका अध्यवसाय अत्यन्त तीव्रो हता है जिससे दुर्गम पथ भी सुगम बन जाता है, पथ के शूल भी फूल बन जाते हैं, विपत्ति भी सपत्ति बन जाती है और तूफान भी उनके अपूर्व साहस को देखकर लौट जाते है। मार्ग की सभी बाधाएँ उन्हे दृढ उत्साह प्रदान करती है और उलझन उनके लिए सुलझन बन जाती है, समस्या भी वरदान रूप होती है, उनमें एक साथ राम के समान संकल्प शक्ति, हनुमान के समान उत्साह, अंगद के समान दृढता, महावीर के समान धैर्य, बाहुबली के समान वीरता और अभयकुमार के समान दक्षता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वह निन्दा और प्रशसा की किंचित् मात्र भी चिन्ता न कर गजराज की तरह झूमता हुआ और शेर की तरह दहाडता हुआ अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढता ही रहता है।

वह मनस्वी युग-पुरुष अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह समाज का मुख भी है और मस्तिष्क भी। वह समाज के विकास व कल्याण के लिए स्वय अपने युग के अधविश्वासो, अन्धपरम्पराओ और मूढतापूर्ण रूढिवाद से संघर्ष करता है, जूझता है। जब तक उसके तन में प्राण-शक्ति है, मन मे तेज है, विचारो मे उत्साह है और वाणी मे ओज है, तब तक वह विकट संकटो मे गुलाब के फूल की तरह मुस्कराता रहता है, स्वकल्याण के साथ परकल्याण करता है। उसका सोचना, उसका बोलना और उसका कार्य करना सभी मे जन-कल्याण की भावनाएँ अँगडाइयाँ लेती रहती है। शिव-शंकर की तरह स्वय जहर के प्याले को पीकर समाज को सदा अमृत प्रदान

करता है। राम की तरह स्वय वनवास भोगकर भाई को राज्य देता है। रामधारीसिंह दिनकर ने ठीक ही कहा है—

सव की पीड़ा के साथ व्यथा अपने मन की जो जोड़ सके।
मुड़ सके जहाँ तक समय, उसे निर्दिष्ट दिशा मे मोड़ सके॥
युग पुरुष वही सारे समाज का विहित धर्मगुरु होता है।
सवके मन का जो अन्धकार अपने प्रकाश से धोता है॥

स्थानकवासी जैन समाज मे समय-समय पर ऐसे अनेक महापुरुष पैदा हुए हैं, जिन्होने समाज को नया कार्य, नयी वाणी और नया विचार दिया है। जिन्होने अपने प्राणो की वाती जलाकर समाज को नूतन आलोक से भर दिया। उनका स्वभाव निस्तरग समुद्र की भाँति था, जो हलचल और कोलाहल से दूर रहकर भी विकास की तरंगो से सदा तरंगित होता रहा है। वे सृजनात्मक शक्ति मे विश्वास करते हैं, और उनकी सम्पूर्ण शक्ति सदा उदात्त सृजनात्मक कार्यों मे ही नियोजित रही। ऐसे महापुरुष विरोध को विनोद मानकर कार्य करते रहते हैं, यदि कोई उनकी निन्दा भी करता है तो भी वे स्वयं दूसरो की निन्दा नही करते। उनकी पाचनशक्ति कबूतर की तरह इतनी प्रचण्ड होती है, कि वह मान-अपमान के कंकर-पत्थर भी हजम कर उससे शक्ति प्राप्त करते रहते हैं।

समुद्र यात्रा करने वालो को सदा तूफान का भय बना रहता है। समुद्र की यात्रा करे और तूफान का सामना न करना पडे, यह संभव नही है। कुशल नाविक तूफानी वातावरण मे भी नौका को अच्छी तरह से खेता है और उसे पार पहुँचाता है। युगपुरुष भी उफान और तूफान से घवराता नही है, किन्तु सतत जागरूक रहकर स्वयं को और समाज को अपने लक्ष्य पर पहुँचाता है।

युगपुरुष बनाये नही जाते वलिक स्वय अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से वनते हैं। किन्तु सभी युगपुरुष एक समान नही होते। कितने ही युगपुरुष तेल-चित्र की भाँति होते हैं, जो दूर से तो वहुत ही सुहावने लगते है पर सन्निकट जाने पर उनमे अनेक विकृतियो के धब्बे भी दिखाई पड़ते हैं।

कितने ही युगपुरुष जल चित्र की तरह होते है जो दूर से सुहावने और चित्ताकर्षक नही लगते पर सन्निकट से देखने पर सुन्दर ही नही, अति सुन्दर लगते हैं।

कितने ही युगपुरुष घास-फूस की आग की तरह क्षणिक प्रकाश देकर

सदा के लिए बुझ जाते है। कितने ही युगपुरुष अगारे की तरह जलते रहते हैं, उनमे गर्मी होती है, किन्तु प्रकाश नही होता। किन्तु महानतम युगपुरुष वह है जो कोहिनूर हीरे की तरह सदा चमकता रहता है। चाहे दूर हो चाहे सन्निकट, चाहे दिन हो चाहे रात, चाहे अकेला हो चाहे परिषद के बीच, चाहे सुप्त हो चाहे जागृत, जिसके जीवन मे सदा एकरूपता रहती हैं, बहुरुपियापन नही होता। सूर्य की चमचमाती किरणो के संपर्क में जो भी आता है वह चमक उठता है, वैसे ही युगपुरुष के सम्पर्क से अधम से अधम व्यक्ति का जीवन भी महान् बन जाता है, पतित भी पावन बन जाता है।

स्थानकवासी जैन समाज के युग-पुरुषो की परम्परा की लडियो की कडी मे श्रद्धेय सद्गुरुवर्य, अध्यात्मयोगी, राजस्थान केसरी, प्रसिद्ध वक्ता उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज भी हैं। आपश्री ने समाज को नूतन विचार, नूतन चिन्तन और नूतन वाणी प्रदान की। समाज के उत्कर्ष के लिए, समाज के संगठन के लिए आपने प्रबल प्रयास किया, हजारो मील की पदयात्राएँ की, अगणित कष्ट सहन किये किन्तु कभी भी कृतित्व का अहंकार नही किया। अनासक्त योगी की तरह कार्य करके कभी उसके फल की आकाक्षा नही की। समाज के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिए आपने सदा अपने आपको सर्मपित किया, और जीवन का भोग देकर उसकी गरिमा में चार चाँद लगाते रहे है।

आपश्री समाज के कर्मठ नेता है। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज की सेवा के लिए सर्मपित किया। अतः समाज आपको हृदय से चाहता है। समाज को आपके नेतृत्व मे विश्वास है।

विरल व्यक्तित्व

आपका बाह्य व्यक्तित्व जितना नयनाभिराम है उससे भी अधिक अन्दर का जीवन मनोभिराम है। सद्गुरुदेव की बाह्य आकृति को देखकर दर्शक को अजन्ता और एलोरा की भव्य मूर्तियाँ सहज ही स्मरण हो आती है। दूर से आते हुए दर्शक को प्रथम दर्शन मे ऐसा लगता है, जैसे स्वामी दयानन्द ही सामने बैठे है। विशाल देह, लम्बा कद, दीप्तिमान निर्मल गौर वर्ण प्रशस्त-भाल, उन्नत शीर्ष, केशरहित दीप्त कपाल, नुकीली ऊँची नाक, उन्नत वक्ष, सशक्त मासल भुजाएँ, तेजपूर्ण शान्त मुखमण्डल, प्रेमपीयूष वर्षाते हुए उनके दिव्य नेत्रो को देखकर दर्शक मुग्ध हुए बिना नही रहता। उनमें सागर का विस्तार है, पौरुष का समुद्र ठाठें मार रहा हैं और दूसरी ओर करुणा का मेघ वर्षण भी हो रहा है। पुरुषत्व और मसृणता के ऐसे पुञ्जीभूत व्यक्तित्व की दूसरी आकृति देखने को भी मिलनी

दुलभ होगी। वाणी मे वीरो की जैसी सुदृढता, पैरो में अंगद जैसी शक्ति, खादी के धवल वस्त्रो मे वेष्टित तप.पूत व्यक्तित्व जैसे मूर्तरूप धारण कर रहा है। मुख पर मुखवस्त्रिका और स्कन्ध पर रजोहरण जैसे स्थानकवासी संस्कृति के आचारपक्ष और विचारपक्ष की सुन्दर अभिव्यक्ति हो।

आप कभी भी मजुल मुखाकृति पर निखरती हुई चिन्तन की दिव्य आभा, प्रभा देख सकते हैं। उदार आँखो के भीतर से छलकती हुई सहज स्नेह-सुधा का पान कर सकते हैं। वार्तालाप मे सरस शालीनता, संयमित जीवन की विवेकबिम्बित क्रियाशीलता, जागृत मानस की उच्छल संवेदन-शीलता, उदात्त उदारता को परख सकते है। प्रेम की पुनीत प्रतिमा, सरसता-सरलता की सुन्दर निधि, दृढ सकल्प और अद्भुत् कार्यक्षमता से युक्त गुरुदेव श्री का वाह्य और आन्तर् व्यक्तित्व वडा ही दिलचस्प और विलक्षण है।

जन्म-भूमि

आपश्री का जन्म मेवाड़ (राजस्थान) मे हुआ जो देश की स्वतन्त्रता और गौरव की रक्षा के लिए सैकडो वर्षों तक निरन्तर वलिदान करता रहा है। जहाँ के वीर योद्धाओ ने अपने कवोष्ण रक्त से मातृभूमि को सीचा, अपने प्राणो से भी अधिक मातृभूमि को प्यार किया और उसकी रक्षा के लिए राजस्थान के पुरुष ही नही किन्तु वीर रमणियो ने और वालको ने भी प्राणो की आहुतियाँ दी। जन्मभूमि के लिए ही नही, किन्तु धर्म के लिए भी जिन्होने हँसते-हँसते बलिदान किया है।

भारत का नक्शा उठाकर देखें तो उसके पश्चिमी अंचल पर विशाल प्रदेश राजस्थान है, अस्ताचल को जाता हुआ सूर्य प्रतिदिन इस पावन भूमि को अन्तिम नमस्कार करके पुनः उदय होने का वरदान माँगता है। राज-स्थान का नक्शा उठाकर देखें तो उसके पश्चिमी छोर को स्पर्श कर पूर्व और उत्तर की ओर बढता हुआ एक विशाल भूखण्ड है—मेवाड़, जो वीरता, साहस और धार्मिक संस्कारो मे सदा अग्रणी रहा है। उसी मेवाड के सुप्रसिद्ध ग्राम गोगुन्दा के सन्निकट सिमटार ग्राम मे श्रद्धेय गुरुदेव का जन्म हुआ।

आपश्री के पूज्य पिताश्री का नाम सूरजमलजी था और माता का नाम वालीबाई था। आप वर्ण की दृष्टि से ब्राह्मण हैं। आपके पूर्वज पाली मे रहते थे। पाली का ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्त्व है। प्राचीन शिला-लेखो मे पाली का नाम पल्लिका अथवा पल्ली मिलता है। अनुश्रुति है कि यहाँ पर एक लाख ब्राह्मणो के घर थे और वे सभी लक्षाधिपति थे। बाहर

से जो भी गरीब ब्राह्मण आता उसे वे एक ईंट और एक रुपया प्रति घर से देते। ईंटो से वह मकान बना लेता और एक-एक रुपया प्राप्त होने से वह भी लखपति हो जाता। उन्हें यदि कोई पूछता तो वे पाली में रहने से अपने आपको पालीवाल कहते और सभी को अपनी पावन भूमि का गर्व था, किन्तु संवत् १३९३ मे यवनो का आक्रमण पाली मे हुआ। पालीवालों के साथ भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में यवन जीत नही पा रहे थे, अत: वे युद्ध में गायो को आगे कर लडने लगे। गायो पर प्रहार न करने के कारण पाली-वाल परास्त हो गये और मुसलमानो ने उन्हें परेशान करने के लिए वहाँ के तालाबो में गायो को कत्ल करके डाल दिया, जिससे वे पानी भी न पी सके। अत: उन्हे १३९३ मे पाली छोड़नी पड़ी और भारत के विविध अंचलों में वे चले गये। वहाँ जो ब्राह्मण थे वे पालीवाल ब्राह्मण कहलाए और जो वैश्य थे वे पल्लीवाल कहलाये। इस तथ्य को एक प्राचीन कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

तेरह सौ तिरानवे, घणो मच्यो घमसाण।
पाली छोड पधारिया, ये पालीवाल पहचान॥

जैनियो के चौरासी गच्छो में से एक पालीवाल गच्छ भी है जिसकी उत्पत्ति पाली से मानी जाती है। हाँ, तो पाली से ही आपश्री के पूर्वज मेवाड़ में आये। मेवाड के महाराणा ने आपके पूर्वजों को जागीरी दी। सिम-टार में सभी ब्राह्मण जागीरदार है।

श्री सूरजमलजी का स्वभाव बहुत ही मधुर था और व्यवहार बडा विनम्र था। श्रीमती वालीबाई के शील-स्वभाव-विनय-मधुर-भाषण-कार्यदक्षता प्रभृति सद्गुणो को देखकर आस-पास के पडोसी उसे इस परिवार की लक्ष्मी समझते थे। एक दिन वालीबाई सो रही थी। प्रातःकाल का शीतल मन्द समीर ठुमुक-ठुमुककर चल रहा था। वालीबाई ने स्वप्न में देखा, एक आम का हरा-भरा वृक्ष जो फलो से लदा हुआ था, जिसकी मीठी और मधुर सौरभ से आस-पास का वातावरण महक रहा था, वह आकाश से उतरा और मुँह मे प्रवेश कर गया। इस विचित्र स्वप्न को देखकर वह उठ बैठी। उसने अपने पति सूरजमलजी से प्रस्तुत स्वप्न के सम्बन्ध मे पूछा। उन्होने स्वप्नशास्त्र की दृष्टि से चिन्तन करते हुए कहा—यह स्वप्न बहुत ही शुभ है। आम फलो का राजा है। अत: तुम्हारा जो पुत्र होगा वह राजा-महाराजाओ की तरह तेजस्वी होगा और अपनी विद्वत्ता के मधुर सौरभ से दिग्-दिगन्त को सुगन्धित बनायेगा।

स्वप्न को सुनकर माता फूली न समायी। उसके पैर धरती पर नही टिक रहे थे। वह आज बहुत ही प्रसन्न थी। भावी की कमनीय कल्पना कर आनन्दविभोर थी।

उस युग मे बहुविवाह की प्रथा थी। सूरजमलजी जागीरदार थे। अतः उनके दो पत्नियाँ थी। जब लघु पत्नी को यह ज्ञात हुआ कि इस प्रकार बडी बहन को शानदार स्वप्न आया है, तो वह मन ही मन घबराने लगी। सवा नौ माह पूर्ण होने पर वि० सं० १९६७ की आश्विन शुक्ला चतुर्दशी के दिन बालक का जन्म हुआ। स्वप्न मे फला-फूला आम्रवृक्ष देखा था, अतः बालक का नाम अम्बालाल रखा गया। बालक अम्बालाल दूज के चाँद की तरह बढ रहा था। माता वालीबाई ने देखा कि मेरे कारण से मेरी लघु बहन का अन्तर्मानस व्यथित है, अत. मुझे यहाँ नही रहना चाहिए—ऐसा विचार कर अपने प्यारे पुत्र को लेकर अपने पिता के घर नान्देशमा पहुँच गई। बाद मे सूरजमलजी की लघु-पत्नी के भी एक पुत्र और एक पुत्री हुई, जिनका नाम भेंरूलाल और तुलसीबाई रखा गया। नान्देशमा मे ही लालन-पालन व बड़े होने से आपकी जन्म-भूमि नान्देशमा के नाम से ही प्रसिद्ध है।

नान्देशमा ग्राम मे जैनियो की मुख्य रूप से आबादी थी। जैन बालकों के साथ ही बालक अम्बालाल बडा हो रहा था। उनके ही साथ खेलता-कूदता तथा बालसुलभ क्रीड़ाओ से माँ के मन को आल्हादित करता। ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने के कारण आप मे प्रतिभा की सहज तेजस्विता थी। आपकी बुद्धि बहुत ही विचक्षण थी। नान्देशमा मे जैन श्रमण व श्रमणियो का आगमन प्रायः होता रहता था। आपकी माताजी जैन श्रमणो के तप और त्याग से प्रभावित थी। उनकी उपदेशप्रद वाणी सुनने का बड़ा शौक था। उनके निर्मल हृदय मे सन्तो के प्रति सहज भक्तिभावना की धारा प्रवहमान थी। माँ के साथ पुत्र मे भी धर्म का रग लग रहा था। रूप और बुद्धि की विशेषता के कारण ग्रामनिवासी भी बालक की प्रशसा करते। वह जहाँ भी जाता, उसे आदर मिलता। बालक अबालाल एक सस्कारी बालक था, उसमें विनय, विवेक और व्यवहार कुशलता आदि सद्गुण विकसित हुए थे।

बालक अम्बालाल जब नौ वर्ष का हुआ, तब एकाएक माता बीमार हुई, धीरे-धीरे बीमारी बढती चली गई और एक दिन उसने सदा के लिए आँख मूँद ली। माँ की मृत्यु को देखकर बालक अम्बालाल चिन्तन करने लगा कि माँ को यह क्या हो गया? उसने अभी तक जीवन की सुषमा ही देखी थी, किन्तु आज उसने विकराल मृत्यु को भी देखा था। वह

सोचने लगा—जीवन सुन्दर है, किन्तु मृत्यु क्या है ? यह तो बहुत ही क्रूर है, भयकर है। जिस तरह मृत्यु ने मेरी माँ को मुझ से छीन लिया, क्या उसी तरह मुझे भी एक दिन मरना होगा ? इसी चिन्तन मे उसका मन अन्दर ही अन्दर वैराग्य सागर से तरगायित होता रहा।

वैराग्य और दीक्षा

पिता स्नेहवश पुत्र को सिमटार ले गये। किन्तु माँ के अभाव से उसका मन वहाँ नही लगा। वह पुन अपने ननिहाल नान्देशमा आ गया। उस समय परावली गाँव के निवासी सेठ अम्बालाल जी ओरडिया, जिनका ससुराल नान्देशमा था, वहाँ आये हुए थे। उन्होने बालक अम्बालाल को देखा तो बडे आल्हादित हुए और उसे प्रेम से समझाकर अपने साथ परावली ले गये। सेठ अम्बालाल को विवाह किये हुए दस-बारह वर्ष हो गये थे किन्तु उनके कोई सन्तान नही थी। सेठ और सेठानी सन्तान के लिए तरस रहे थे। बालक अम्बालाल को पाकर वे पुत्रवत् उसका लालन-पालन करने लगे। पुण्यवान् बालक अम्बालाल के कारण उनके घर में सम्पत्ति की अभिवृद्धि होने लगी और साथ ही चिरकाल की अभिलाषा भी सन्तान होने से पूर्ण हो गई। सन्तान-प्राप्ति से उनका मन बहुत ही आल्हादित हो गया। बालक अम्बा-लाल आनन्द से वहाँ रहने लगा। किन्तु सन्तान होने के पश्चात् सेठ के मन मे जो आकर्षण पहले बालक अम्बालाल के प्रति था, वह कम हो गया। वह प्रतिदिन सेठ के पशुओ को लेकर जगल में चराने को जाता और उस शान्त जंगल में क्रीड़ा करता। कभी वंशी बजाता और कभी पशुओ के पीछे दौड़ता। पढना-लिखना तो कुछ था नही। सारे दिन खेलना-कूदना। एक दिन जगल मे खेलते हुए पैर में पत्थर की चोट लग गई। खून बह चला। दर्द के मारे आँखो में आँसू बहने लगे। किन्तु उस भयकर जगल मे उसकी करुण पुकार कौन सुनता ? सन्ध्या होने पर लड़खडाते कदमो से वह पशुओं को लेकर घर पहुँचा। सेठ ने विलम्ब से आने के कारण उसे डाँटा और उपा-लम्भ देते हुए कहा—देखकर नही चला जाता ?

ससार बडा विचित्र है। सर्वत्र स्वार्थ की प्रधानता होती है। अम्बालाल ने देखा कि मेरे प्रति सेठजी का जो मधुर स्नेह था, अब वह नही है। सन्तान होने के कारण सेठ की दिन प्रतिदिन मेरे प्रति उपेक्षा हो रही है। जखम गहरा था। सेठ ने उसकी मरहम पट्टी भी नही की। प्रात काल होते ही सेठ ने कहा —पशुओ को लेकर जंगल मे चराने के लिए जाओ। तीव्र ज्वर था, वेदना से

चला भी नही जा रहा था, तथापि वह जंगल में पहुँचा। आज उसे अपनी प्यारी माँ की स्मृति हो आयी। वह रोया, दिल खोलकर रोया। उसे सेठ के इस व्यवहार से मन मे ग्लानि हुई। सन्ध्या के समय जब वह लौटकर घर पहुँचा तो खूब तेज ज्वर था; किन्तु किसी ने भी सान्त्वना नही दी। बालक के मन मे उसकी प्रतिक्रिया हो रही थी। उसने एक दिन देखा कि साध्वियाँ वहाँ पर आयी हुई है। उसने साध्वीप्रमुखा महासती श्री धूलकुँवरजी से पूछा—यहाँ पर चार साल पहले सेठ के गुरु श्री ताराचन्द जी महाराज आये थे। उन्होने मुझे बहुत ही प्रेम से अपने पास बिठाया था। बातें की थी। सुन्दर चित्र बताये थे और कुछ कथाएँ भी सुनाई थी। वे इस समय कहाँ है? मैं उनका शिष्य बनना चाहता हूँ।

साध्वीजी ने बालक के शुभ लक्षण देखकर कहा—वे इस समय मारवाड में हैं। यदि तेरी इच्छा हो तो हम तुझे उनके पास पहुँचवा देंगी। बालक ने दृढता के साथ कहा—मैं उनके पास मारवाड़ नही जाऊँगा; किन्तु वे यहाँ आयेंगे तो उनका शिष्य अवश्य बन जाऊँगा। आप समाचार देकर यहाँ बुला लें, मैं आपको वचन देता हूँ कि वे यहाँ आयेंगे तो मैं उनका शिष्य बन जाऊँगा।

महासतीजी ने बालक के विचार, उसकी दीक्षा ग्रहण करने की भावना और उसके शुभ लक्षणों की सूचना मारवाड में गुरुदेव श्री ताराचन्द जी महाराज के पास भिजवायी। सूचना पाकर श्री ताराचन्द जी महाराज मेवाड पधारे। उदयपुर आदि क्षेत्रो को अपने उपदेशो से पावन करते हुए परावली पधारे। श्रोतागण प्रवचन सुनने के लिए उत्सुक थे। बालक अम्बालाल जब जगल से लौटकर आया तब उसने देखा कि चार वर्ष पूर्व जिन महाराज के मैंने दर्शन किये थे वे पट्टे पर बैठे हुए प्रवचन कर रहे हैं। प्रसग चल रहा था भृगु पुरोहित का, जिसके दोनो पुत्र सयम साधना के महामार्ग पर चढना चाहते हैं और माता-पिता उन्हें रोकना चाहते हैं किन्तु उनका वैराग्य इतना प्रबल था कि माता-पिता और राजा-रानी भी साधना के पथ पर बढ़ जाते हैं।

प्रवचन के पश्चात् जब गुरुदेव एकान्त मे बैठे तो बालक ने अपने हृदय के विचार महाराजश्री के समक्ष व्यक्त किये कि मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

श्रद्धेय गुरुदेवश्री की पैनी दृष्टि ने बालक के जीवन मे छिपा हुआ महान् व्यक्तित्व और कृतित्व देखा। उन्होने देखा, यह बालक एक दिन

विशिष्ट व्यक्ति बनेगा। वस्तुतः पन्ने की चट्टान या खण्ड को जौहरी ही परख सकता है, साधारण व्यक्ति के लिए तो वह पत्थर की चट्टान है किन्तु उसकी बनावट एवं मिट्टी के मटमैले रंग से आवृत उसकी चमक-दमक देखकर जौहरी समझ लेता है कि यह पत्थर नही, पन्ना है। इसे काटा-छांटा जाय तो यह मूल्यवान नगीना बन सकता है।

उस समय भी बालक के पैर में पीड़ा थी। भाग्यवशात् एक वैद्य उदयपुर से वहाँ आये हुए थे। महाराजश्री के संकेत से वैद्य ने उपचार किया और बालक कुछ ही दिनो में पूर्ण स्वस्थ होकर श्री ताराचन्द जी महाराज के साथ चल दिया। यद्यपि पिता सूरजमलजी ने बालक को रोकने का बहुत ही प्रयास किया; किन्तु नान्देशमा के श्रावको के समझाने से उन्होने सहर्ष दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी। बालक अम्बालाल ने गुरुदेव के नेतृत्व में अध्ययन प्रारम्भ किया। बुद्धि की तीक्ष्णता से कुछ ही समय मे अक्षरों का परिज्ञान हो गया और पुस्तकें पढने लगा तथा धार्मिक साहित्य का अभ्यास भी करने लगा। उस वर्ष गुरुदेव का वर्षावास पाली में हुआ। आप वैरागी के रूप में थे। उस समय महान् चमत्कारी वक्तावरमलजी महाराज भी वहाँ थे। उन्होने बालक अम्बालाल के हाथ मे पद्म, कमल, ध्वजा, मत्स्य, डमरू आदि अनेक शुभ चिन्ह देखकर श्री ताराचन्द जी म० से कहा—"आपका यह शिष्य जैन धर्म की प्रभावना करने वाला बहुत ही भाग्यशाली होगा।"

अनेक संघो का आग्रह था कि आप को दीक्षा हमारे यहाँ हो; किन्तु गुरुदेव श्री ताराचन्द जी म० चाहते थे कि आपका अध्ययन खूब अच्छी तरह से हो जाय। अत. गुरुदेव कुछ लम्बे समय तक आपको वैरागी के रूप में रखना चाहते थे। सिवाना और जालौर सघ वालो का आग्रह था—वैरागी अम्बालाल को अध्ययन करते हुए बारह महीने से अधिक समय हो गया है, अतः दीक्षा का सुनहरा लाभ हमें मिलना चाहिए। उनकी निर्मल-निश्छल भक्ति ने गुरुदेव का दिल पिघला दिया। सन्तो को भक्त श्रावक प्यारे होते है। कुरुक्षेत्र के मैदान में श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन से कहा—जो भक्तिमान है वह मुझे प्रिय है—

"भक्तिमान् यः स मे प्रियः।"

तथा—

"भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।"

तो गुरुदेव भक्त श्रावकों की बात कैसे टाल सकते थे? अन्त में गुरुदेव ने जालौर संघ को स्वीकृति प्रदान की। संघ में आनन्द की गंगा बह चली।

वि० स० १९८१ की ज्येष्ठ शुक्ला दशमी का दिन था। प्रभात का सूर्य आज नई आशाएँ व नई उमंगें लेकर उदित हुआ था। ठुमुक-ठुमुककर पवन चल रहा था और आकाश मे पक्षीगण कलरव के बहाने साधना पथ के महान पथिक की बलैयाँ ले रहे थे। एक विशाल जुलूस के साथ बालक रामलाल और बालक अम्बालाल दोनो घोडे पर बैठकर गुरुदेवश्री के चरणो मे पहुँचे। उनकी आँखें मे आज अद्‌भुत चमक थी। चेहरे पर विलक्षण तेज दमक रहा था। वे उत्साह और उमग से भरे हुए दिखलाई दे रहे थे। गुरुदेव ताराचन्दजी महाराज और पडित नारायणचन्द जी महाराज अन्य सन्तो के साथ एक विशाल वट वृक्ष के नीचे विराजमान थे।

भारतीय संस्कृति मे वट वृक्ष का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वह विस्तार और समृद्धि का प्रतीक है। उसकी शीतल छाया मे सात्विकता और साधना की मधुर सौरभ होती है। वट वृक्ष के नीचे ही भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान की उपलब्धि हुई थी और हजारो व्यक्तियो को सर्वप्रथम उन्होने दीक्षा प्रदान की थी। तथागत बुद्ध को भी वटवृक्ष के नीचे ही बोधि की उपलब्धि हुई थी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम पंचवटी मे वट वृक्ष के नीचे ही रहे थे। अतीत काल से ही वट वृक्ष आदर की दृष्टि देखा जा रहा है। दोनो बालको ने उस वृक्ष के नीचे अवस्थित गुरुदेव के श्रीचरणो में विनम्र वन्दना की और शरीर पर जो सुन्दर रग-विरंगे तथा बहुमूल्य आभूषण पहने हुए थे उनका त्याग करने के लिए एकान्त स्थान की ओर गये। क्योकि बाह्य वेष का मन के साथ गहरा सम्बन्ध है। केशरिया और लाल रग का वस्त्र भय, आक्रोश, क्रोध व चिन्ता का प्रतीक माना गया है और श्वेत वस्त्र मन की धवलता व शान्ति का प्रतीक माना गया है। युद्ध-विराम के लिए सफेद झडी बतायी जाती है और शान्ति के लिए श्वेत वस्त्र धारण किये जाते है। वैरागी-द्वय ससार के अशान्त, राग-द्वेष-मय कलुषित वातावरण से मुक्त होकर शान्ति, समता, निर्लोभता और वीतरागता के पथ पर अपने मुस्तैद कदम बढ़ा रहे थे। अतः रंगीन वस्त्र और आभूषणो का त्याग कर, श्वेत वस्त्रो को धारण कर गुरुदेव के चरणो मे पुनः उपस्थित हुए। उस समय ऐसा परिज्ञात हो रहा था कि राजहस मानसरोवर की यात्रा के लिए पख फडफडा रहे है। सैकड़ो व्यक्तियो की उत्सुक आँखे उन बालको के दर्शन के लिए उत्सुक थी। चारो ओर से जय-जयकार की गगनभेदी ध्वनियो से आकाश मंडल गूँज रहा था। बड़ा अद्‌भुत दृश्य था। चौदह वर्ष के दो बालक जीवन भर के लिए सत्य, अहिंसा आदि महाव्रतो की अखण्ड साधना

का दृढ़ संकल्प ग्रहण कर आग्नेय पथ पर बढ़ रहे थे। बडा ही रोमांच-कारक और भावप्रवण सुन्दर दृश्य था। दर्शको के नेत्रो से आनन्द और आश्चर्य के आँसू प्रवाहित थे और हृदय के सुकुमार तार झनझना रहे थे कि धन्य है ऐसे बाल मुनियो को !

दोनो बालक सद्गुरुदेव के समक्ष श्वेत परिधान को धारण किये हुए भागवती दीक्षा ग्रहण करने के लिए उपस्थित थे। गुरुदेवश्री ने शास्त्रीय दीक्षाविधि सम्पन्न की। अब वे दोनो मुनि बन गये थे। रामलालजी का नाम मुनि प्रतापमलजी रख गया और वे प० श्री नारायणचन्दजी महाराज के शिष्य घोषित किये गये और अम्बालाल जी का नाम पुष्कर मुनिजी रखा गया और वे श्रद्धेय ताराचन्दजी महाराज के शिष्य जाहिर किये गये।

श्रमण बनकर पुष्कर मुनिजी महाराज ने अपने जीवन के तीन लक्ष्य बनाये—संयम-साधना, ज्ञान-साधना और गुरु-सेवा।

शिष्य का जीवन तभी निखर सकता है जब योग्य गुरु का सगम हो। बिना गुरु के न अनुभव का अमृत मिलता है और न ज्ञान का मार्ग ही। प्राचीन ग्रथो में गुरु को भगवान के समान माना गया है। कहा है—'**तित्थयर समो सूरी**' यानि आचार्य तीर्थंकर के समान है। उपनिषदो मे भी कहा है—"**आचार्यवान्, पुरुषो वेद**" जिसने गुरु किया, वही ज्ञानी हो सकता है।

आपश्री दीक्षा ग्रहण के पश्चात् विद्यार्जन में लग गये। बाल्यावस्था, तीक्ष्ण बुद्धि और विद्याध्ययन के प्रति प्रेम इन तीनो का संगम होने से आपश्री अपने भावी जीवन के महल का बड़ी वीरता के साथ निर्माण करने लगे। आपने आगम साहित्य व स्तोक साहित्य का पहले अध्ययन किया, 'ज्ञानकण्ठा और दामअण्टा' प्रस्तुत राजस्थानी कहावत के हार्द को आप सम्यक् प्रकार से जानते थे अत. ज्ञान को कण्ठस्थ करने मे आप का विशेष लक्ष्य था। आपने जब संस्कृत व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ किया तब गुरुदेव ने उसकी दुरूहता का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि—

> **खान पान चिन्ता तजै, निश्चय मांडे मरण।**
> **घो-चो-पू-ली करतो रहै, तब आवै व्याकरण ॥**

अर्थात् जब कोई खान-पान प्रभृति चिन्ताओ को त्यागकर केवल व्याकरण के पीछे अपना जीवन झोक देता है, उतने समय के लिए स्मरण करने, पुनरावर्तन करने, पूछ-ताछ करने और लिखने को अपना मुख्य विषय

बनाता है तब जाकर संस्कृत व्याकरण को हृदयंगम करने की सफलताएँ प्राप्त होती है। आपश्री ने व्याकरण को ही नहीं, जिस विषय को भी हाथ में लिया, उसमें अपने आपको समर्पित किया और अपनी प्रखर बुद्धि के बल पर सैकडो ग्रन्थ कण्ठस्थ किये। आपश्री जानते थे कि बाल्यकाल में जितना ही स्मरण किया जाय उतना ही अच्छा है। उसके पश्चात् बुद्धि मे कुछ परिपक्वता आती है, पढे हुए अर्थ को समझने की जिज्ञासा उद्बुद्ध होती है और दूसरो को बताने की भी। विचारो की अभिव्यक्ति के लिए भाषण और लेखन आवश्यक है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक बेकन ने लिखा है—

"रीडिंग मैक्स ए फुल मैन, स्पीकिंग ए परफेक्ट मैन, राइटिंग एन एग्जेक्ट मैन।"—"अध्ययन मनुष्य को पूर्ण बनाता है, भाषण उसमे परिपक्वता लाता है और लेखन उसे प्रामाणिक बनाता है।"

आपश्री के अध्ययन के लिए गुरुदेव ने अनेक उच्चकोटि के विद्वान नियुक्त किये। प० रामानन्द जी जो मैथिल के थे, उनका अत्यधिक सहयोग मिला। आपने ब्यावर, पेटलाद (गुजरात) और पूना के फर्गुसन कालेज मे न्याय व साहित्य तीर्थ की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। साथ ही आपश्री ने वैदिक, बौद्ध और जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन भी किया। आपने वेदो का, उपनिषदो का, गीता और महाभारत का अध्ययन किया और बौद्ध परम्परा के विनयपिटक, दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय आदि पिटक साहित्य का और न्यायविन्दु, प्रमाणवार्तिक, धर्मकोश आदि अनेक बौद्ध ग्रन्थों का और आगम साहित्य के अतिरिक्त उसकी व्याख्या साहित्य का विशेषावश्यक भाष्य, तत्त्वार्थ भाष्य, सन्मतितर्क, प्रमाण-मीमांसा, न्यायावतार, स्याद्वादमजरी, रत्नाकरावतारिका, सर्वार्थसिद्धि, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, योगदृष्टिसमुच्चय, योगविन्दु, योगशतक आदि का भी अध्ययन किया। आपश्री का सस्कृत, प्राकृत, गुजराती और उर्दू भाषा पर खासा अच्छा अधिकार है। आपने अँग्रेजी भाषा का अध्ययन आरम्भ किया था पर परिस्थितिवश उसमे विकास नही हो सका। आज भी आप कभी निष्क्रिय होकर नही बैठते, किन्तु अध्ययन-लेखन में लगे रहते हैं। आपश्री मे अध्ययन के साथ प्रतिभा, मेधा और कल्पना शक्ति की भी प्रधानता है। आज भी आप को बहुत से ग्रंथ कण्ठस्थ हैं। जब कभी भी किसी विषय पर चर्चा करते है तो आप उसके तलछट तक पहुँचते है।

अध्ययन से भी अध्यापन का कार्य अत्यधिक कठिन है। अध्ययन

करने में स्वयं को खपाना पड़ता है। किसी भी ग्रन्थ के निगूढतम भावो को प्रथम स्वयं समझना फिर दूसरों के दिमागो में उन भावों को बिठाना अत्यधिक कठिन कार्य है। अध्यापन कार्य में वही व्यक्ति सफल होता है जिसमें प्रतिभा की तेजस्विता होती है, स्मृति की प्रबलता होती है और अनुभवो का अम्बार होता हैं। आपश्री में प्रतिभा, स्मृति और अनुभूति तीनो हैं, साथ ही सुन्दर शैली भी है। जिससे कठिन से कठिन विषय को भी आप सरल बनाकर प्रस्तुत करने में दक्ष है। विद्यार्थी की योग्यता के अनुसार विषय का रबड की तरह संक्षेप और विस्तार करने में आप कुशल है।

आपश्री ने अपने शिष्य हीरामुनिजी, देवेन्द्रमुनि जी, गणेशमुनिजी, जिनेन्द्रमुनि, रमेशमुनि, राजेन्द्रमुनि, प्रवीणमुनि, दिनेशमुनि, भगवती मुनि, नरेशमुनि आदि को धर्म दर्शन तथा आगम-साहित्य का अध्ययन करवाया।

आपश्री ने महासती शीलकुँवर जी, महासती कुसुमवती जी, महासती पुष्पवती जी, महासती कौशल्या जी, महासती चन्दनबाला जी, महासती विमलवतीजी, महासती सत्यप्रभा जी, महासती चारित्रप्रभा जी, दिव्यप्रभाजी, दर्शनप्रभा जी सुदर्शनप्रभा जी, हर्षप्रभा जी, किरणप्रभा जी, रत्नज्योति जी, रुचिका जी, गरिमाजी, चन्दनप्रभा जी, सुमित्रा जी, नयन ज्योति, संजयप्रभा, स्नेहप्रभा आदि महासतियो को आगमो की टीकाओ व न्याय आदि का अध्ययन करवाया। श्रमणी विद्यापीठ बम्बई में भी आपने कुछ समय तक टीका ग्रन्थों का अध्ययन करवाया। अनेक सन्तो को तथा न्यायमूर्ति इन्द्रनाथ जी मोदी, वकील रस्तोगी जी, वकील हगामीलाल जी, वकील आनन्दस्वरूप जी आदि शताधिक गृहस्थ व्यक्तियो को आपश्री ने तत्त्वार्थसूत्र आदि का अध्ययन करवाया।

आपश्री की विद्वत्ता बहुत ही गहरी है, उसमे सूक्ष्म प्रतिभा, तर्कपटुता और वाक्चातुर्य का मधुर संगम है। जब किसी विषय को समझाते हैं तो ऐसा लगता है कि एक-एक कली खोलकर रख रहे है, गम्भीर से गम्भीर बात भी सहज ही हृदयंगम हो जाती है।

आपश्री का मानना है कि जीवन में शिक्षा का वही महत्त्व है जो शरीर मे प्राण का है। शिक्षा के अभाव में जीवन में चमक-दमक पैदा नही हो सकती; गति और प्रगति नही हो सकती। यूनान के महान दार्शनिक प्लेटो ने शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा—'शरीर और आत्मा मे अधिक से अधिक जितने सौन्दर्य और जितनी सम्पूर्णता का विकास हो सकता है, उसे सम्पन्न करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।' अरस्तु ने कहा—'जिन्होंने मानव-शरीर पर शासन करने की कला का अध्ययन किया है, उन्हे

यह विश्वास हो गया है कि, युवको की शिक्षा पर ही राज्य का भाग्य आधारित है।' एडिसन ने कहा—'शिक्षा मानव जीवन के लिए वैसे ही है, जैसे संगमरमर के पत्थर के लिए शिल्पकला'। आपश्री भी यही मानते है कि विश्व में जितनी भी उपलब्धियाँ है, उनमे शिक्षा सबसे बढकर है। शिक्षा से जीवन मे सदाचार की उपलब्धि होती है, सद्गुणो के सरस सुमन खिलते है। दीक्षा के साथ शिक्षा भी आवश्यक है। यही कारण है कि आपने अपने शिष्य एव शिष्याओ को शिक्षा के क्षेत्र मे आगे बढने की प्रेरणा दी। उनकी शिक्षा के लिए उचित व्यवस्था की। जिस युग मे सन्त-सतीवृन्द परीक्षा देने से कतराता था, उस युग मे आपने उच्च परीक्षाएँ दी और अपने अन्तेवासियो को भी उच्च परीक्षाएँ दिलवायी।

आपश्री की प्रबल प्रेरणा से भवाल चातुर्मास मे वीर लोकाशाह जैन विद्यालय की सस्थापना हुई। अनेक स्थानो पर धार्मिक पाठशालाएँ खुली। श्रमणी विद्यापीठ, घाटकोपर (बम्बई) के निर्माण मे भी आपका प्रबल पुरुषार्थ रहा है।

सन् १९७५ मे आपश्री का वर्षावास पूना मे था। उस अवधि मे विश्वविद्यालय के दर्शन विभागाध्यक्ष डा० वारलिंगे जी से आपश्री का परिचय हुआ और विश्वविद्यालय मे जैन दर्शन और धर्म सम्बन्धी अध्ययन व अध्यापन की व्यवस्था के लिए एक जैन चेयर की सस्थापना करने की योजना बनी। इसमे सेठ लालचन्द जी हीराचन्द जी दोशी ने ढाई लाख रुपये, श्री रतिभाई नाणावटी ने एक लाख रुपये, श्री नवलभाई फिरोदिया ने एक लाख पच्चीस हजार रुपये और अन्य जैन बन्धुओ की ओर से सवा दो लाख रुपये इस प्रकार कुल सात लाख रुपये एकत्र किये गये।

जैन चेयर का कार्य आरम्भ हो गया। विश्वविद्यालय के कुलपति श्री दाभोलकर जी ने विशेष रूप से निम्न पत्र लिखकर आपश्री के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है।

D A Dabholkar   UNIVERSITY OF POONA
Vice-chancellor   Ref No Phil/24/1007
                                                              Date 10-8-1976

Dear Shri Muniji,

I am writing this letter to you to express on behalf of the University of Poona, our profound thankfulness and gratitude for your valuable help, advice, and encouragement towards the endowment of a chair in Jaina Logic, Philosophy and Culture in our Univer-

sity. I am aware of your great interest and devotion to Jaina studies and this act of concern and sympathy expresses your love and devotion to this cause in a most fitting manner. We hope to promote research studies in Jain Philosophy in a manner worthy of the noble cause and also in keeping with the needs and requirements of our society and I am sure, we shall continue to have the benefit of your suggestions and the support of your patronage in our efforts.

Thanking you and with regards,

Your Sincerely
Sd/—D. A. Dabholkar,

To
Shri Pushkar Muniji.

इसी प्रकार पूना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० आनन्द प्रकाश जी दीक्षित श्रद्धेय सद्‌गुरुवर्य के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। उस समय उन्होने विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत एक स्वर्ण पदक की स्थापना करने के लिए प्रार्थना की। विश्वविद्यालय में तत्सम्बन्धी व्यवस्था इसी वर्ष कर दी गई, जैसा कि निम्न पत्र से स्पष्ट है—

Ref No. Ex/Medal/20712 UNIVERSITY OF POONA
Smt Joshi Sunita Govinda 12 Oct, 1977
Candidate no 1945
at the M. A. Examination held in April -1977
865 Sadashiv Peth, Poona—30

Subject —

Award of "The Upadhyaya Shri Pushkar Muni Maharaj padak"

Madam,

I am directed to inform you that 'The Upadhyaya Pushkar muni Maharaj Padak' (Silver medal with Gold Plating) has been awarded to you on the result of M. A Examination, held in April, 1977.

Your Faithfully
Sd/-
Deputy Registrar
(Examinations)

Copy for cs to the Donor

Dr. A. D Batra,

Secretary

The Rajasthan Kasari Adhyatmayogi Pushkar muni ji Abhi-dandan Granth Prakashan Samiti

6/4, Pitra Chhaya, Yervada, Poona Pin—411006

इसी प्रकार पूना के ही एक आर्ट्स एण्ड कामर्स कालेज मे बी० ए० और बी० काम० परीक्षा मे प्रथम आने वाले छात्र को प्रति वर्ष सौ-सौ रुपयो के दो पुरस्कारो की व्यवस्था भी आपश्री की प्रेरणा से की गई है।

श्रमण-श्रमणियो और भाव-दीक्षितो के अध्ययन के लिए आपश्री की प्रेरणा से उदयपुर मे श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुष्कर विद्यापीठ की संस्थापना हुई है, जिसमे सप्रति सतीवृन्द एव भावदीक्षिताए पढ रही हैं।

सन् १९६६ मे आपश्री का चातुर्मास पदराडा था। उस समय महास्थविर श्री ताराचन्द जी महाराज की पुण्य स्मृति मे आपश्री की प्रेरणा से 'श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय' की संस्थापना हुई। पहले यह सस्था पदराडा मे चलती रही। उसके पश्चात् सस्था का मुख्य कार्यालय उदयपुर मे आ गया। इस सस्था के द्वारा साहित्य की विविध विधाओ मे बड़े ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। आज दिन तक तीन सौ ग्रन्थो से अधिक ग्रन्थ निकल चुके हैं। यह सस्था साहित्यिक दृष्टि से एक गौरव-गरिमा से युक्त संस्था है। इस सस्था का उद्देश्य है—शोध-प्रधान व जीवनपयोगी उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन करना।

आपश्री के पावन प्रवचनो से प्रभावित होकर भारत के विविध स्थलो मे गृहस्थो के धार्मिक साधना हेतु स्थानक बने तथा अनेक स्थलो पर बालक और बालिकाओ के धार्मिक अध्ययन हेतु पाठशालाएँ भी निर्मित हुई और स्वाध्याय के लिए वाचनालय और लाइब्रेरियाँ भी बनी। उन सभी का विस्तार से परिचय देना यहाँ पर सभव नही, सक्षेप मे उनकी सूची इस प्रकार है—

(१)	श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय	उदयपुर
(२)	,, ,, ,,	पदराडा
(३)	श्री अमर जैन ज्ञान भण्डार	खाण्डप

(३७) श्री जैन धर्म स्थानक	पालघर (महा०)
(३८) ,, ,, ,,	भीम (राजस्थान)
(३९) ,, ,, ,,	बीरार
(४०) ,, ,, ,,	केलवारोड
(४१) ,, ,, ,,	सफाला
(४२) ,, ,, ,,	वाणगॉव
(४३) ,, ,, ,,	मजल
(४४) ,, ,, ,,	खाण्डप
(४५) ,, ,, ,,	भारण्डा
(४६) ,, ,, ,,	गदक
(४७) दक्षिण भारतीय जैन स्वाध्याय संघ	मद्रास
(४८) मद्रास विश्वविद्यालय मे जैन इन्डोमन्ट	मद्रास
(४९) श्री तारक युवक परिषद	उदयपुर
(५०) श्री तारक गुरु जैन पुस्तकालय	बम्बोरा
(५१) अमर जैन धर्मस्थानक	सिंघाडा
(५२) श्री वर्धमान पुष्कर जैन सेवा समिति	मदनगंज
(५३) श्री तारक गुरु जैन पुस्तकालय	राखी

□□

२ छवि : आभ्यन्तर व्यक्तित्व की

सन्त जीवन में जिन सद्गुणो की आवश्यकता है, उनमें विनय एक प्रमुख गुण है। विनय को धर्म का मूल कहा है और अहंकार को पाप का मूल बताया है। जिस साधक को अहंकार का काला नाग डस लेता है वह साधना की सुधा का पान नही कर सकता। अहंकार और साधना में "तेजस्तिमिरयोरिव" प्रकाश और अंधकार के समान वैर है, विरोध है।

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य का जीवन विनम्र ही नही, अति विनम्र है। आप श्रमण-संघ के उपाध्याय है, अनेक विशिष्ट उपाधियो से अलंकृत है, तथा अपने भूतपूर्व सम्प्रदाय के मूर्धन्य वरिष्ठ सन्त है तथापि गुरुजनो का उसी प्रकार आदर करते हैं, जैसे एक लघु सत करता है। आप प्रत्येक समुदाय के व्यक्तियो के साथ खुलकर विचार-चर्चा करते हैं, उनमें किसी भी प्रकार का कार्पण्य या संकोच नही करते। जहाँ अन्य सन्त अन्य सम्प्रदायो के धार्मिक स्थानो में जाने में अपना अपमान समझते है, वहाँ आपश्री बड़े ही प्रेम के साथ जाते है। आपश्री यह मानते है कि दूर रहकर दूरी को मिटाया नही जा सकता। स्नेह-सौजन्ययुक्त संपर्क से वह दूरी भी मिट जाती है, जिसे कभी न मिटने वाला समझा जाता है। स्थानकवासी परम्परा मे होने के कारण आपको मूर्ति-पूजा मे विश्वास नही है, तथापि आबू के देलवाडा मन्दिर में, राणकपुर जी, केसरिया जी आदि अनेक श्वेताम्बर मन्दिरो मे और श्रवणबेलगोला, गजपन्था आदि अनेक दिगम्बर जैन मन्दिरो मे आप पधारे है और आपने वहाँ की कलाकृतियो को गहराई से देखा है।

आपश्री नासिक से सूरत पधार रहे थे। गजपन्था तीर्थ में उस समय चारित्र-चक्र चूडामणि दिगम्बराचार्य शान्तिसागर जी विराज रहे थे। दिगम्बर श्रावको का भी आग्रह था कि आप वहाँ पधारें, और एक ही धर्मशाला मे विराजें। अनेक विषयो पर अनेक चर्चाएँ हुई। आपश्री के उदारतापूर्ण विचारों से शान्तिसागर जी महाराज अत्यन्त प्रभावित हुए।

बम्बई में आगम प्रभावक पुण्यविजय जी महाराज विराज रहे थे। वे वयस्थविर, ज्ञानस्थविर और दीक्षास्थविर थे। आपश्री उनसे मिलने के

लिए बालकेश्वर के जैन मन्दिर मे पधारे। लम्बे समय तक आगमिक और दर्शनिक विषयो पर आपश्री ने उनसे विचार-चर्चाएँ की। आपश्री की जिज्ञासाएँ और विनयशीलता को निहार कर पुण्यविजयजी महाराज गद्‌गद् हो गये और आपश्री का उनके साथ ऐसा ही स्नेहपूर्ण सम्बन्ध जीवन भर बना रहा।

बम्बई के नानावटी अस्पताल मे प० मुनि यशोविजयजी का एक्सिडेंट होने के कारण वे भर्ती थे। आप वहाँ पधारे और सुख-शान्ति के समाचार पूछे। आपकी स्नेह सद्‌भावना के कारण एक उल्लासमय वातावरण का निर्माण हुआ।

परम श्रद्धेय उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज के साथ श्रमण सघ के वैधानिक प्रश्नो को लेकर आपश्री का उनके साथ अत्यधिक मतभेद हो गया। अन्त मे उपाचार्यश्री को श्रमणसघ के उपाचार्य पद से त्यागपत्र देना पडा। किन्तु जब आपश्री उदयपुर पधारे तब श्रद्धेय गणेशीलालजी महाराज अस्वस्थ थे। उनका आपरेशन भी हुआ था। आपश्री अपनी शिष्य मडली सहित वहाँ पर पधारे और सविधि वन्दन किया। गुरुदेवश्री की विनम्रता को देखकर श्री गणेशीलाल जी महाराज का हृदय आनन्द से नाच उठा और उन्होने गुरुदेवश्री को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया।

अजमेर मे महास्थविर श्री हगामीलाल जी महाराज जिनका श्रमण सघीय सतो के साथ कभी भी सम्बन्ध नही रहा किन्तु आपश्री के विनम्रता-पूर्ण सुव्यवहार से उनका हृदय परिवर्तित हो गया और वे सदा-सदा के लिए आपश्री के बन गये।

राजस्थान प्रान्तीय सन्त सम्मेलन मे सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि श्रद्धेय हस्तीमल जी महाराज से पुन. श्रमण सघ मे मिलने हेतु आपश्री उनसे वार्तालाप करें। जब आपश्री जोधपुर विराज रहे थे तब वहाँ की स्थिति काफी तनावपूर्ण थी। तथापि आपश्री ने प्रवचन बन्द रखा और स्वागत हेतु बहुत दूर तक पधारे। आपश्री की विनम्रता से उस समय जोध-पुर सघ मे सद्व्यवहार का सचार हो गया। आपश्री का हस्तीमल महाराज के साथ प्रवचन भी हुआ। उनकी हार्दिक इच्छा श्रमणसघ मे न मिलने की होने से वार्ता आगे न बढ सकी। किन्तु आपके सद्व्यवहार से वे भी सोचने के लिए विवश हो गये। वस्तुत' विनम्रता एव स्नेह ऐसा श्रेष्ठ कवच है जिसे आज दिन तक कभी कोई छेद नही सका।

सरलता की प्रति-मूर्ति

श्रमण भगवान महावीर ने कहा—सरलता साधना का महाप्राण है। चाहे गृहस्थ साधक हो, चाहे संयमी साधक हो दोनों के लिए सरलता, निष्कपटता, अदम्भता, आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है। घृतसिक्त पावक के समान सहज सरल साधना ही निर्धूम होती है, निर्मल होती है—

सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्त व पावए।।

सद्गुरुदेव नख से शिख तक सरल है, निर्दम्भ है। जैसे अन्दर है वैसे ही बाहर हैं। उनकी वाणी सरल है, विचार सरल है और जीवन का प्रत्येक व्यवहार भी सरल है। कही पर भी छिपाव नही, दुराव नही, टेढ़े-मेढे रास्ते पर चलना वे साधक के लिए घातक मानते है। आपका स्पष्ट विचार है कि सरल बने बिना सिद्धगति कदापि नही हो सकती। आज आवश्यकता चरित्र की है, चातुर्य की नही, सम्यक् आचार की है, समलंकृत वाणी की नही, कार्य की है, विवरण की नही; आज साधक के जीवन में बहुरुपियापन आ गया है। उसका व्यक्तिगत जीवन अलग है, सामाजिक जीवन अलग है। उसके जीवन में दम्भ का प्राधान्य है, यही कारण है उसके जीवन का प्रभाव नही पडता। आपश्री बालक की तरह सरल हैं। मैंने देखा कि कई बार स्खलना होने पर आपश्री महास्थविर ताराचन्द जी महाराज के पास बिना किसी संकोच के स्पष्ट रूप से कह देते थे। आप जीवन की सीधी राह पर चलने के आदी है, अगल-बगल की चाल आपको पसन्द नही है।

आज आप इतने महान् पद पर है, तथापि आप मे वही सरलता है, वही सौम्यता है। वस्तुतः सरलता से आपके जीवन में निखार आया है।

दया के देवता

दया साधना का नवनीत है, मन का माधुर्य है। दया की सरस रसधारा से साधक का हृदय उर्वर बनता है, और सद्गुणो के कल्पवृक्ष फलते हैं, फूलते है। सन्त दया का देवता कहा जाता है। वह स्व और पर के भेदभाव को भुलाकर वात्सल्य और दया का अमृत प्रदान करता है। सन्त का हृदय नवनीत से भी विलक्षण है। नवनीत स्वताप से द्रवित होता है, परताप से नही, परन्तु सन्त हृदय पर-ताप से ही द्रवित होते है, स्व-ताप से नही। कोमलता और कठोरता का मोम और पत्थर का विचित्र संगम होता है। महापुरुष वह है जो स्वयं के कष्टो में, स्वय के जीवन में आने वाली

विपत्तियो मे वज्र बनकर मुस्कराता है। "सहिओ दुक्खमत्ताए पुट्ठो नो झंझाए" चारो ओर दुःखो से घिरा रहने पर भी वह घबराता नही और न विचलित ही होता है। पर दूसरो के दु:ख को देखकर द्रवित हो जाता है। आगमो मे साधक का एक नाम 'दविए' भी आया है—दूसरो के दुःख से द्रवित होने वाला। उसके हृदय की यही भावना होती है—

दर्द जिस दिल मे हो उस दिल की दवा बन जाऊँ।
दुःख मे हिलते हुए लब की दुआ बन जाऊँ॥

इसी ध्येय की पूर्ति के लिए वह अपना जीवन न्यौछावर कर देता है।

आपश्री रायपुर (राजस्थान) वर्षावास को पूर्ण कर बिलाडा की ओर पधार रहे थे। मार्ग मे एक सरस वन था और वाणगंगा का निर्मल पानी बह रहा था। तृषा दूर करने को पशु और पक्षीगण वहाँ आते थे और आस-पास मे छिपे हुए शिकारीगण निर्दयता से उन्हे समाप्त कर देते थे। उस प्राकृतिक सौन्दर्य-स्थली मे श्रद्धेय सद्गुरुवर्य विश्राम कर रहे थे। उसी समय झाडियो मे छिपे हुए शिकारीगण उधर निकल आये। आपश्री ने मधुर वचनो मे उन्हे समझाया कि निरीह प्राणियो का मारना श्रेयस्कर नही है, उन्हे सताना महान् पाप है—

गरीब को मत सताओ, गरीब रो देगा।
गरीब का मालिक सुनेगा तो जड से खो देगा॥

शिकारियो पर आपकी वाणी का अद्भुत प्रभाव पडा। उन्होने सदा के लिए शिकार का परित्याग कर दिया।

बम्बई और पूना के बीच मे लोनावला है, उसके सन्निकट ही कार्ला की गुफाएँ हैं। वे गुफाएँ कला की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर बनी हुई है। बौद्ध युग की स्मृति को ताजा करती है। प्राचीन युग मे वहाँ पर सैकडो बौद्ध साधक आध्यात्मिक साधना किया करते थे। वहाँ पर एक देवी का मन्दिर है और आस-पास के आदिवासी उसे अपनी आराध्य देवी मानते हैं। गुरुदेवश्री उस ऐतिहासिक स्थल को देखने के लिए वहाँ पर पधारे और एक दिन वही पर विश्राम किया। मध्याह्न मे कुछ आदिवासी लोग बकरे का बलिदान देनें हेतु वहाँ उपस्थित हुए। आपश्री ने आगे बढकर उन्हे समझाया कि बलिदान देना कितना बुरा है, तथापि जब वे न समझे तब आपश्री ने कहा कि मेरा बलि-दान दे सकते हो, किन्तु बकरे का नही। अन्त मे आदिवासियो का हृदय

परिवर्तित हो गया और उस बकरे को अभयदान देकर कहा—बाबा ! हम भविष्य में कभी भी बलिदान नही करेगे।

भारत मे फैले हुए सभी धर्म-सम्प्रदायो के अनुयायियो में चीटियो, चिडियो, पशु-पक्षियो के प्रति अनुकम्पा की भावना है। पर जहाँ मानव के प्रति अनुकम्पा का प्रश्न आता है, वहाँ वे बहुत पीछे हटते है। जहाँ, मानवो पर आपत्तियो के काले-कजरारे बादल मँडरा रहे हों, वे भूख-प्यास से छटपटा रहे हो, ठण्ड से ठिठुर रहे हो और भयकर गर्मी मे झुलस रहे हो, बिना व्यापार के परिवार सहित दीन-हीन बनकर धर्म से विमुख हो रहे हो, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प आदि के कारण परिवार क्रूर काल के ग्रास हो रहे हो, माताएँ अपने मातृत्व को विस्मृत होकर अपने प्यारे लालो को बेचने के लिए तैयार हो रही हो, सत्य और शील से च्युत हो रही हो, वहाँ पर धर्मचेतना मन्द हो जाती हैं, वहाँ पर चिन्तन का ढंग ही निराला हो जाता है और अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर वे कहते है कि ये सभी अपने कर्म का फल भोग रहे है। कौन किसके कर्म को परिवर्तित कर सकता है। जिसके जैसे कर्म। किन्तु जब उनके जीवन पर विपत्तियाँ मँडराती है, तब उनकी भाषा बदल जाती है। मानवता की पुकार है कि सर्वप्रथम मनुष्यो के प्रति दया भावना हो। कोई मानव कष्ट से छटपटाता हो उस समय साधनसम्पन्न व्यक्ति टुकुर-टुकुर निहारता रहे, यह मानवता का उपहास है। सद्गुरुदेव ने जब भी सुना कि मानव कष्ट से घिरा हुआ है तो आपने अपने प्रवचनो मे मानवो को सहयोग करने के लिए सन्देश दिया और आपके प्रवचनो से दान की निर्मल स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई, जिससे अनेक मानवो को आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ और उनके लडखड़ाते हुए जीवन मे पुनः अभिनव चेतना का संचार हो गया।

सन् १९७५ का वर्षावास गुरुदेवश्री का पूना मे था। उस समय पूना में बहुत तेज वर्षा हुई। झोपड-पट्टी मे रहने वाले बे-घरबार हो गये। पूज्य गुरुदेवश्री ने शौच के लिए जगल मे जाते हुए उनकी दयनीय स्थिति देखी। उनका दयालु हृदय द्रवित हो उठा। लौटकर अपने प्रवचन मे उन व्यक्तियो की कारुणिक स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया। उसी समय वहाँ पर श्री पुष्कर गुरु सहायता सस्था की सस्थापना हुई और उस सस्था के द्वारा हजारो व्यक्तियो को सहायता प्रदान की गई और सम्प्रति भी उस सस्था के द्वारा सहयोग दिया जा रहा है।

सन् १९४८ मे आपका वर्षावास घाटकोपर (बम्बई) मे था। उस समय

भयकर तूफान आया। उस तूफान से हजारो व्यक्ति बे-घरबार हो गये। आपकी प्रेरणा से लाखो का दान दिया गया। इसी तरह बिहार, आन्ध्रप्रदेश के अनेक दुष्कालो मे बाढ-पीडितो को आपके उपदेश से अन्न और वस्त्र आदि का सहयोग प्रदान किया गया है। सन् १९८१ मे आपश्री का वर्षावास 'राखी' (राजस्थान) मे था। उस समय राजस्थान मे भयंकर दुष्काल था, घास के अभाव मे पशु दनादन मर रहे थे। आपश्री के पावन उपदेश से लाखो की राशि एकत्र हो गई। इस चातुर्मास मे सेठ रतनचन्द जी देवीचन्द जी राका ने अत्यधिक उदारता के साथ तन, मन और धन से चातुर्मास की शोभाश्री मे चार चाँद लगाये, स्थानक, आरोग्य व ज्ञान केन्द्र मे दिल खोलकर अनुदान दिया। वस्तुत आपश्री का हृदय बहुत कोमल है। किसी भी दीन-हीन व्यक्ति को देखकर वह बर्फ की तरह द्रवित हो जाता है। आपके अद्भुत दयालु हृदय के कारण आपकी साधुता प्रतिपल-प्रतिक्षण ज्योतिर्मय होती चली गई है। पर-दु.खदर्शन से ही नही, पर-दु ख के वर्णन मात्र से ही आपका कोमल हृदय चन्द्रकान्तमणि के समान विगलित हो जाता है।

सहिष्णुता की साक्षात मूर्ति

सन्त कष्ट से घबराता नही है। सोने को ज्यो-ज्यो आग मे तपाया जाता है त्यो-त्यो वह अधिक चमकता है। चन्दन को ज्यो-ज्यो घिसा जाता है त्यो-त्यो उस में से अधिक सुगन्ध आती है। जीवन मे ऐसे क्षण आते हैं, जब सामान्य मानव विचलित हो जाता है, किन्तु सन्त पुरुष उन क्षणो मे भी अपूर्व साहस, धैर्य और सहिष्णुता का परिचय देते हैं। सन् १९४२ में आप कुचेरा से विहार कर नागौर पधार रहे थे। मार्ग मे मूडँवा नामक एक कस्बा है। उस समय वहाँ पर एक भी जैन का घर नही था। माहेश्वरियो के सैकडो घर थे। आपश्री ने भिक्षा हेतु एक माहेश्वरी के भव्य-भवन मे प्रवेश किया। माहेश्वरी जैन श्रमणो से परिचित नही था। उसका व्यवसाय उडीसा मे था। ज्योही उसने आपको अपने भवन मे प्रवेश करते हुए देखा त्योही क्रोध से आँखें लाल करके कहा—शरम नही आती! बिना पूछे किसी के घर मे चले आए हो? निकल जाओ यहाँ से!

आपश्री ने मुस्कराते हुए कहा—सेठ जी! हम जैन साधु है और मधुकरी करते है; मधुकरी के लिए ही तुम्हारे यहाँ पर आये है। हम लोग गरम पानी का उपयोग करते हैं। यदि आप के यहाँ पर स्नानादि के लिए गरम पानी हो तो हमे दे दीजिए। सेठ जी ने गुर्राते हुए कहा—क्या तेरे बाप ने यहाँ गरम पानी कर रखा है? आपश्री ने सहज मुद्रा मे ही कहा—इसीलिए

तो हम आये हैं। भारतीय दर्शनशास्त्र में पुनर्जन्म माना गया है। आप इस जन्म में नही किन्तु किसी जन्म में बाप रहे होगे। आपकी क्षमा से सेठ का क्रोध ठडा हो गया। उसने कहा—आप यही खडे रहिए, मैं अन्दर जरा पूछता हूँ कि गरम पानी है या नही। सेठ ने सेठानी से पूछा—जैन साधु आये है। क्या गरम पानी है ? सेठानी भी तो सेठ की तरह ही तेज-तर्रार थी। उसने कहा—क्या उसकी माँ ने गरम पानी कर रखा है ? सेठ ने बाहर जाकर कहा—पानी तो नही है ? गुरुदेव ने सेठानी के शब्द सुन लिये थे। आपने मधुर मुस्कान बिखेरते हुए कहा—सेठ जी ! आज का दिन तो बड़ा ही अच्छा है, क्योकि माँ भी मिल गई, पिता भी मिल गये है। इसलिए रोटी भी मिल ही जायगी। पानी न सही यदि रोटी बनी हो तो वही दे दीजिए। सेठ अन्दर गया और कहा—आइए, आपश्री अन्दर और अपनी माँ से भी मिल लीजिए और उसने भक्तिभाव से विभोर होकर भिक्षा प्रदान की और चरणो में गिर पडा। उसने कहा—मैंने अपने जीवन में हजारो साधु देखे है, जगन्नाथ पुरी मे मेरा व्यवसाय है। वहाँ पर हजारो साधु-संन्यासी आते है। जरा सा मन के प्रतिकूल होने पर वे चिमटा लेकर ही दौड़ते है। पर आपको मैंने इतने कर्कश व कठोर शब्द कहे पर आपकी मुखमुद्रा पर कुछ भी परिवर्तन नही आया है। वस्तुतः आज मुझे एक सच्चे सन्त के दर्शन हुए हैं। और उस सेठ के मन में जैन श्रमणो के प्रति अगाध श्रद्धा पैदा हो गयी। यह है—सहिष्णुता का स्थायी प्रभाव !

सन् १९५४ मे आपश्री दिल्ली का वर्षावास पूर्ण कर जयपुर आ रहे थे। महास्थविर श्री ताराचन्द महाराज के पैर की नस मे एकाएक दर्द हो जाने से आपको एक गॉव मे रुकना पडा। जहॉ पर जैन श्रमण पहली बार गये थे। आपश्री ने एक मकान मे प्रवेश किया। मकान के आँगन मे पन्द्रह-सोलह वर्ष की बालिकाएँ खेल रही थी। ज्योही उन्होने मुँह बाँधे हुए व्यक्ति को आँगन मे आया हुआ देखा त्यो ही वे भय से काँप उठी और जोर से चिल्लाती हुई दनादन सीढियाँ चढकर ऊपर पहुँच गईं। लड़कियो की चीत्कार सुनकर घर मालकिन बाहर आयी और लगी गालियो की बौछार करने। जब उसकी गालियो का स्टॉक समाप्त हो गया, आपने कुछ भी उत्तर न दिया, तो वह शान्त हो गई। उसने पूछा—अरे ! तू कौन है ? आपने धीर-गम्भीर शब्दो मे कहा—मैं जैन साधु हूँ। उसने कहा—तू कैसा जैन साधु है ? साधु वह होता है, जो किसी गृहस्थ के द्वार पर जाते ही 'हरे कृष्ण, हरे राम' की जोर से आवाज लगाता है। तू साधु नही, पाखण्डी

है। आपश्री ने मुस्कराते हुए कहा—माता जी ! जैन साधु का आचार आवाज लगाने का नही है। वह शान्ति के साथ ही गृहस्थ के घर मे प्रवेश करता है और जो भी अपने नियमानुसार भिक्षा मिलती है, वह उसे ले लेता है। यदि आपके यहाँ भी कुछ रोटी आदि बनी हुई हो तो हमे दे दीजिए।

घर मालकिन ने पहली बार ही ऐसा साधु देखा था जो दुनियाँ भर की गालियाँ देने पर भी क्रोधित नही हुआ था और मुस्कराते हुए भिक्षा माँग रहा था। श्रद्धा से उसका सिर झुक गया। उसने प्रेम से भिक्षा दी और बोली—बाबा ! मेरा अपराध क्षमा करना। मुझे क्या पता था कि तुम इतने अच्छे साधु हो।

आपश्री अपने गुरुदेव के साथ ही जयपुर की ओर कदम बढा रहे थे। उन दिनो गुरुदेव के पैर मे अत्यधिक दर्द था, अत विशेष लम्बे विहार की स्थिति नही थी। राहगीरो से पता चला कि सडक से चार फर्लांग दूर पर एक नया गाँव बसा हुआ है। वहाँ के किसान बहुत ही समृद्ध है। अतः तुम्हे वहाँ भिक्षा मिल जायगी। आपश्री गुरुदेव के साथ उस गाँव मे पधारे। गाँव के बीच मे एक नीम का पेड था और उसके चारो ओर बैठने के लिए एक चबूतरा बना हुआ था। वहाँ जाकर आपश्री ने विश्राम किया। किन्तु कुछ ही क्षणो मे गाँव के मकानो के द्वार बन्द हो गये। पाँच-दस मिनट मे पन्द्रह-बीस नौजवान हाथ मे लाठियाँ लेकर अपने मकानो के पिछले द्वारो से निकलकर उपस्थित हुए और कहा—यहाँ पर क्यो बैठे हो ? शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ। आपश्री ने शान्ति से कहा—भाइयो ! तुम्हारे गाँव की प्रशसा सुनी कि यहाँ के लोग देवता हैं, इसलिए हम यहाँ पर आये। ये हमारे गुरुजी हैं। इन के पैर मे बहुत दर्द है। हम जैन साधु वाहन का उपयोग नही करते। इसलिए आज हम यहाँ रहना चाहते हैं। प्रात हम आगे प्रस्थान कर जायेंगे। किन्तु युवको ने दाँत पीसते हुए कहा—तुम एक क्षण भी यहाँ नही ठहर सकते। यदि सीधी तरह से चले जाओगे तो अच्छा है वरना लाठियो से हम तुम्हारी पूजा करेंगे। और उन सभी ने लाठियाँ उठा ली। वे एक भी बात सुनने के लिए तैयार नही थे। उन्हे यह भ्रम हो गया था कि ये साधु नही, मुँह बाँधे हुए डाकू हैं, जो हमारी सारी सम्पत्ति को लेकर नौ दो ग्यारह हो जायेंगे। क्योकि उस समय राजस्थान मे डाकुओ का अत्यधिक आतक फैला हुआ था। अन्त मे आपको वहाँ से प्रस्थान करना पडा और वे लोग लाठियाँ लेकर तब तक पीछे-पीछे चलते रहे, जब तक आप मुख्य सडक पर न पहुँचे। गुरुदेवश्री के पैर मे असह्य दर्द था किन्तु

सडक पर कोई भी गाँव नही था। जो भी गाँव थे वे सडक से एक या दो मील दूर बसे हुए थे। कंकरीले और पथरीले ऊबड़-खावड़ पथ से उन गावो मे जाना गुरुदेव के लिए कठिन था। अतः भूखे और प्यासे बिना लक्ष्य के सडक पर चलते रहे और सामने आते-जाते राहगीरो से पूछते रहे कि सडक के किनारे कोई गाँव या मकान है क्या ? राहगीरो ने बताया कि चौदह मील दूर सडक के किनारे एक मन्दिर है। दिन भर चलने के पश्चात् सायंकाल आप उस मन्दिर मे पधारे। मन्दिर की पुजारिन ने ज्यो ही आप को देखा, त्यो ही भक्ति भावना से विभोर होकर नाच उठी—आज मेरे सद्भाग्य है कि गुरुदेवो के दर्शन हुए। पुजारिन ने बताया कि गुरुदेव मेरी माता जयपुर के जौहरियो के वहाँ पर रहती थी और मैं भी वही पर बडी हुई। वर्षों से इच्छा थी कि सद्गुरुओ के दर्शन हो, किन्तु इस जगल में कहाँ दर्शन हो ? यहाँ हमारी खेती है। मैं अपने परिवार के साथ यहाँ रहती हूँ। आज मेरा महान् सद्भाग्य है कि हमारे सभी के एकासन व्रत है। मैंने अभी-अभी भोजन बनाकर रखा है। और स्नान के लिए गरम पानी भी। आप कृपा करो। आहार भी तैयार है और पानी भी। उसने बहुत प्रेम से भिक्षा प्रदान की। आपश्री ने श्रद्धेय गुरुदेव से कहा—आज का आनन्द भी अपूर्व रहा। प्रातः काल तर्जना थी तो सायकाल अर्चना। तर्जना और अर्चना मे समभाव मे रहना हो श्रमण जीवन का सही आनन्द है, श्री गुरुदेव !

उसी विहार का एक और प्रसंग है—एक गाँव मे आप अपने गुरुदेव श्री के साथ पधारे और शकरजी के मन्दिर मे रुके। भिक्षा के समय मे कुछ विलम्ब था। उस गाँव में शाकाहारियो के बीस-पच्चीस घर थे। उस दिन अमावस्या भी थी और सोमवार भी था। एक व्यक्ति मन्दिर मे दर्शनार्थ आया। उसने कहा—बाबा ! आज तुम्हारा भोजन मेरे यहाँ होगा। गुरुदेव श्री ने उसे समझाने का प्रयास किया कि जैन श्रमण किसी एक गृहस्थ के यहाँ से पूरा भोजन नही लेते, वे मधुकरी करते हैं, किन्तु वह व्यक्ति कहाँ समझने वाला था ? वह तो अपनी बात पर अडा था। गुरुदेवश्री ने उससे विवाद करना उचित नहीं समझा। वह चला गया। भिक्षा का समय होते ही आप पात्र लेकर भिक्षा के लिए चल पडे किन्तु वह व्यक्ति पहले ही घर मे आपको मिला और उसने आपको फटकारते हुए कहा कि मैंने तुम्हे कहा था कि भिक्षा आज मेरे यहाँ से लेने का है, फिर अन्य स्थान पर भिक्षा लेने क्यो आये ? लगता है तुम लोग बडे मक्कार हो। सीधे रूप से मानने वाले नही। अतः मैं स्वय ही सभी घरो में मनाई कर दूँ जिससे तुम्हे कोई भिक्षा

न दे। आप तो अपरिचित थे और उसने एक ही साँस मे सारे गाँव में चक्कर लगा दिया। जब उन घरो में आप भिक्षा के लिए पहुँचे तो सभी ने उपालम्भ के स्वर मे कहा—तुम कैसे बावा हो ? तुम्हे जरा भी सन्तोप नही है। तुम्हारा भोजन उनके वहाँ है, फिर यो क्यो भटक रहे हो ? आपश्री ने उन्हे समझाने का प्रयास किया किन्तु वे समझने वाले कहाँ थे ? पहले घर मे ही आधी रोटी मिली थी और शेष घरो मे गालियाँ तथा उपालम्भ, किन्तु आप के चेहरे पर किंचित्-मात्र भी खेद नही था। प्रसन्नता अँगडाइयाँ ले रही थी। पहले दिन भी आहार पूरा नही हुआ था और आज सभी घरो मे इनकारी हो चुकी थी। आपने उस सज्जन से पूछा—बताओ, तुम्हारे यहाँ भोजन कब बनता है ? उसने कहा—साधु बने हो ! जरा सन्तोष रखो। जब बनेगा तब तुम्हे दे दूँगा। आप शान्त भाव से बैठे रहे। शाम के पाँच बज गये। तब तक मुँह मे पानी भी न डाला था। पाँच बजने पर उसने कहा—अच्छा चलो, तुम रात्रि मे भोजन नही करते हो तो अभी चलकर हमारे घर में भोजन लो। आपने बहुत ही मधुरता से उसे समझाया—जैन साधु गृहस्थ के घर पर भोजन नही कर सकता, वह तो अपने स्थान पर लाकर ही भोजन करता है। अन्त में वह इस बात के लिए तैयार हो गया कि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम यहाँ लाकर भोजन कर सकते हो। गुरुदेव उसके घर पधारे और निर्दोष आहार देखकर चार-पाँच लघु पूडियाँ और एक पात्र मे कढी लेकर पधारे। किन्तु ज्योही देखा कि पूडियो मे मिट्टी के तेल की तीव्र गन्ध आ रही थी और कढी चखी तो वह कसैली थी। जबान पर रखते ही जबान उसके तीक्ष्ण स्पर्श से फटने लगती थी। महास्थविर श्री ताराचन्द जी महाराज ने कहा—ये पूडियाँ इतनी कडक हैं कि मेरे से चबाई नही जायेंगी। अतः सुबह जो तुम आधी रोटी ज्वार की लाये थे वह मैं खा लेता हूँ और तुम लोग पूडियाँ तथा तथा कढी का उपयोग कर लो। आपश्री ने कहा—गुरुदेव ! आपको जैसा अनुकूल हो वैसा कीजिए। हम लोगो के दाँत मजबूत है। हम ये कडक पूडियाँ चबा लेंगे। ज्योही महास्थविरजी महाराज ज्वार की रोटी का एक टुकडा लेकर मुँह मे रखने लगे, त्योही मन्दिर के खुले द्वार से वह व्यक्ति आया और क्रोध से आँखें लाल करता हुआ बोला—तुम साधु हो या बदमाश हो ? इस बूढे साधु को तो रूखी-सूखी रोटी खाने को दी है और तुम सभी नौजवान माल खा रहे हो। उसने फुर्ती से वह आधी रोटी का टुकडा लिया और सामने खडे कुत्ते को डाल दिया। उसने कहा—अब मैं नही जाऊँगा, यही बैठा रहूँगा। गुरुदेव पूडो और कढी को धर्मरुचि अनगार की

तरह खा रहे थे। गन्ध की तीव्रता से वमन की तैयारी हो रही थी, खाया नही जा रहा था। वह सामने उच्च आसन पर बैठा हुआ था। उसे समझाने से कुछ लाभ भी नही था। पाँच सन्तों ने वे दो पूडी मुश्किल से खायी थी। तीन पूडियाँ और कढो एक पात्र में रखी हुई थी। जब उसने देखा आप नही खा रहे हैं तो झट से वह अपने मकान मे गया और अपना बर्तन ले आया और अपने हाथ से कढी और तीन पूडियाँ लेकर चल दिया। सायकाल जब प्रतिक्रमण के बाद सत्सग के लिए बैठे तो वह लोगो को कह रहा था कि आज मैंने बाबाओ को ऐसा बढिया भोजन कराया कि शायद इन्होने जिन्दगी मे कभी न किया होगा और मैंने ऐसा पाठ सिखा दिया कि बूढे के साथ कभी ये शरारत नही करेंगे। गुरुदेव मन ही मन उसके भोलेपन पर मुस्करा रहे थे और सोच रहे थे यह प्रसंग जीवन का अविस्मरणीय प्रसग है। यही जीवन की कसौटी है। आज जीवन को साधना मे कसने का सुन्दर अवसर मिला।

इस प्रकार अनेको बार लम्बे-लम्बे विहारो मे कही पर मकान न मिलने पर, कही पर आहार न मिलने पर और कही पर जैन श्रमण से परिचय न होने पर और कही पर भाषा की विकट समस्या उपस्थित होने पर ताडना तर्जना के प्रसग भी उपस्थित हुए। उस समय आपके अन्तर्मानस मे किंचित् मात्र भी क्षुब्धता पैदा न हुई। किन्तु सदा यही सोचकर मन मे आल्हादित होते रहे कि यह तो कुछ भी कष्ट नही है, भगवान महावीर को अनार्य देशो मे कितने कष्ट दिये गये थे तथापि भगवान उन कष्टो का मुस्कराते हुए स्वागत करते रहे। वैसे ही उस पथ पर हमे भी बढना है। कष्ट से घबराना कायरता है। आपके जीवन मे अन्य अनेक प्रसग कष्टसहिष्णुता की दृष्टि से घटित हुए हैं, किन्तु विस्तार भय से यहाँ नही दे रहा हूँ।

आलोचक से प्यार

जिन व्यक्तियो के विमल विचारो मे गहनता व मौलिकता होती है, उन व्यक्तियो के विचारो की आलोचना भी सहज रूप से होती है। पर महान व्यक्ति उसकी ओर ध्यान न देकर अपने सही लक्ष्य की ओर निरन्तर बढते रहते है। गुरुदेवश्री का दृढ मन्तव्य है कि व्यक्ति निन्दा से नही निर्माण से निखरता है। जो उनकी आलोचना करते हैं या प्रशंसा करते है, वे दोनो से समान प्रेम करते हैं। उनके निर्मल मानस पर आलोचना और स्तुति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशसा करने वाले को वे कहते है— तुम्हारा स्नेह है इसीलिए ऐसा कहते हो और निन्दा एवं आलोचना करने

वालो से कहते है—तुमने मुझे ठीक तरह नही समझा है। तुम्हारा विरोध मेरे लिए विनोद है। अनुकूल परिस्थिति मे मुस्कराने वाले इस विश्व में बहुत मिलेंगे, परन्तु प्रतिकूल परिस्थिति मे भी जो गुलाब के फूल की तरह मुस्करा सके, वही महान कलाकार है। गुरुदेवश्री अपनी मस्ती में झूमते हुए कभी-कभी उर्दू का यह शेर गुनगुनाया करते हैं—

मजिले-हस्ती में दुश्मन को भी अपना दोस्त कर।
रात हो जाय तो दिखलाए, तुझे दुश्मन चिराग ॥

कितना सुन्दर, कितना मधुर और कितना सतुलित हैं आपका विचार!

सन् १९६७ का वर्षावास बम्बई—बालकेश्वर मे था। उस समय बालकेश्वर सघ की सस्थापना को लेकर काँदावाडी—बम्बई सघ के अधिकारियो के मन मे यह विचार चल रहा था कि इस सघ की सस्थापना हो जाने से काँदावाडी सघ को प्रतिवर्ष सार्वजनिक कार्यों के लिए जो लाखो रुपयों की आमदनी होती है, वह बन्द हो जायगी। वे उन व्यक्तियो का विरोध करने की स्थिति मे तो नही थे तथापि विरोध करना था। इसलिए उन्होने बाल दीक्षा के प्रसग को लेकर विरोध किया। उनका विरोध अवैधानिक था, क्योंकि जो बाल-दीक्षा दी गयी थी, वह बम्बई से साठ मील दूर दी गयी थी, जो बम्बई महासघ के अन्तर्गत नही था, जिसमे बाल-दीक्षा का निषेध हो। श्रमण-सघ बनने के पश्चात् अनेको बाल-दीक्षाएँ हो चुकी थी। आचार्य और प्रधानमत्री मुनिवर भी बाल-दीक्षा दे चुके थे। विरोध की आँधी इतनी तेजी से आयी कि यदि दूसरा व्यक्ति आपके स्थान पर होता तो वह टिक भी नही सकता था, पर आप विचलित नही हुए। समाचार पत्रो के पृष्ठ रगे हुए आते रहे। उत्तेजनापूर्ण शब्दो मे विरोधी व्यक्ति लिखते रहे। पर आप जानते थे कि आँधी की उम्र लम्बी नही होती, उसके बाद वर्षा आती है और आकाश निर्मल हो जाता है। वही स्थिति अन्त मे हुई। विरोध करने वालो के मन मे अपने अकृत्य के प्रति पश्चात्ताप हुआ और जो विरोध कर रहे थे वे आपके चरणो मे झुक गये। आपने कभी भी विरोध करने वाले का विरोध नही किया। आपकी साधुता को देखकर बम्बई महासंघ के के मूर्धन्य मनीषी अध्यक्ष श्री चिमनभाई ने हजारो की जनता के बीच कहा—"पुष्कर मुनि जी जेवा साचा साधु गोत्या पण न मले।" यह है आपकी अगाध सहिष्णता जिससे आलोचक भी आपके चरणो मे नत होते रहे हैं।

आपके जीवन मे अनेको बार ऐसे प्रसग आये है, किन्तु आप सदा यही कहते रहे कि प्रभात के पूर्व अन्धकार जरा गहरा होता है। अन्धकार को देखकर घबराओ नही, उसके पीछे सहस्त्ररश्मि सूर्य का चमचमाता हुआ

प्रकाश रहा हुआ है। यदि तुम सत्य पथ पर हो, न्याय के मार्ग पर चल रहे हो, तो तुम्हें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नही है। आलोचना वह धुँआ है जो सत्य का पवन चलते ही नष्ट हो चाता है।

आध्यात्मिक साधना : उपलब्धियाँ व चमत्कार

भारतीय साधना पद्धति में जप का अधिक महत्त्व रहा है। जप आधि-व्याधि और उपाधि को नष्ट कर समाधि प्रदान करता है। जप में अद्‌भुत शक्ति है। गीता मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन ! यज्ञों में मैं जप यज्ञ हूँ—"यज्ञाना जप यज्ञोऽस्मि।"

जप में दो अक्षर है। 'ज' जन्म का विच्छेद करने वाला है और 'प' पाप का नाश करने वाला है। अतः जप से ससार का उच्छेद होता है। ध्यान से मन की शुद्धि होती है। जप से वचन की शुद्धि होती है, और आसन से काया की शुद्धि होती है। सिद्धि के लिए जप की अनिवार्य आवश्यकता है। एतदर्थ ही भारत के एक तत्त्वचिन्तक ने लिखा है—

"जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्न संशयः" जप में महान् शक्ति है। जो कार्य अन्य शक्ति से सभव नही है वह असंभव कार्य भी जप से संभव हो जाता है। नियमित रूप से नियमित समय पर सद्‌गुरु देव से सविधि नवकार महामन्त्र को लेकर यदि जप किया जाय तो अवश्य ही सिद्धि मिलती है, ऐसा सद्‌गुरुदेव का दृढ विश्वास है। वे स्वय प्रतिदिन नियमित रूप से जप करते हैं। वे भोजन की अपेक्षा भजन को अधिक महत्त्व देते है। पूज्य गुरुदेव श्री के जीवन में जप की साधना साकार हो उठी है। वे खूब रसपूर्वक जप करते है और जो भी उनके सपर्क मे आता है उसे भी वे जप की प्रबल प्रेरणा प्रदान करते है। वे अपने प्रवचनो मे अनेक बार फरमाते है—अन्य मन्त्र-तन्त्रो के पीछे पागल होकर क्यो घूम रहे हो ? महामन्त्र नवकार जैसा प्रभावशाली कोई मन्त्र नही है। एकनिष्ठा, एकतानता के साथ उसका जाप करो तो तुम्हे अनिर्वचनीय आनन्द की उपलब्धि होगी।

श्रद्धेय गुरुदेवश्री को जप और ध्यान की साधना गुरु-परम्परा से प्राप्त है। जप की सिद्धि के लिए गुरुजनो की कृपा अत्यन्त आवश्यक है। यदि उनके द्वारा प्राप्त विधि से जप किया जाय तो अद्‌भुत शक्ति पैदा होती है। गुरुदेव प्रातः, मध्याह्न और रात्रि मे जप साधना नियमित रूप से घंटो तक करते हैं। आपकी साधना मे किसी भी प्रकार की लौकिक कामना व भावना नही है। किन्तु जप का अलौकिक प्रभाव मैंने स्वय अपनी आँखो से अनेको बार देखा है, प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि लोग रोते हुए और बिलखते हुए आते है

और वे गुरुदेवश्री का मांगलिक सुनकर हँसते और मुस्कराते हुए विदा होते है। हजारो व्यक्ति ऐसी उपाधियो से ग्रस्त थे जिनका डाक्टर और वैद्य उपचार नही कर सकते थे, उन्हे भी गुरुदेव की वाणी से स्वस्थ होते हुए देखा है। मैं कुछ प्रसग यहाँ पाठको को जानकारी के लिए दे रहा हूँ।

सन् १६६६ मे श्रद्धेय गुरुदेव नासिक मे विराज रहे थे। एक बहन रोती हुई आयी—महाराजश्री ! गजब हो गया। एक नौ वर्ष के नन्हे बच्चे की आँखो की रोशनी चली गयी। नेत्र विशेषज्ञो ने भी हाथ झटक दिये। अब उसका क्या होगा ? कहती हुई बहन का गला भर आया। उसकी आँखो से मोतियो के समान आँसू टपक पड़े। गुरुदेवश्री का दयालु हृदय द्रवित हो उठा। वे उसके घर पर पधारे। मागलिक सुनाने के पश्चात् पूछा—मुन्ना ! तुझे कुछ दिखाई देता है ? मुन्ने ने कहा—गुरुदेव ! कुछ धुँधला-धुँधला दिखाई देता है। तीन दिन तक मागलिक सुना और उसकी ज्योति पुन आ गयी। बहन नेत्र विशेषज्ञो के पास गई। नेत्र विशेषज्ञ हैरान थे। वे गुरुदेव के समीप आये और कहा—"आपके चमत्कार से चमत्कृत होकर हमे भी आस्तिक होना पडा।"

इसी तरह सन् १६७७ मे गुरुदेव मैसूर से बेंगलौर पधार रहे थे। बेंगलौर से ३५ मोल की दूरी पर अवस्थित रामनगर गाँव मे ध्यान से निवृत्त होकर बैठे ही थे कि बेंगलौर से एक कार आयी। उसमे बीस-पचीस वर्ष की एक बहन थी। बेंगलौर के सभी डाक्टर उसका उपचार करके थक गये थे। पाँच दिन से उस बहिन ने न आँख खोली, न मुँह ही। खाना-पीना और बोलना भी बन्द था और देखना भी। अभिभावको ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि गुरुदेव ! कोई आशा नही है। बेंगलौर के ही एक सम्माननीय श्रावक सेठ छगनमल जी साहब मुथा ने कहा कि महाराज के पास जाओ। उनका मागलिक सुनो तो ठीक हो सकती है। अत. गुरुदेव हम बहुत ही आशा से आये हैं। गुरुदेव ने कहा—मैं कोई डॉक्टर नही हूँ। मैं तो साधक हूँ। साधना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। गुरुदेव ने ज्यो ही नवकार महामत्र दो क्षण उसे सुनाया और सामने रखी पुस्तक को बताते हुए कहा—जरा इसे पढो ! बहिन दनादन पढने लगी। सभी लोग गुरुदेवश्री के आध्यात्मिक तेज को देखकर चमत्कृत हो उठे। उस बहन ने पाँच दिन से मुँह मे अन्न का एक कण भी नही डाला था और पानी की एक बूँद भी न ली थी। उसने अच्छी तरह से भोजन किया।

गुरुदेवश्री का १९७३ का वर्षावास अजमेर में था। पारसमलजी ढाबरिया की धर्मपत्नी ने मासखमण का तप किया। पारणे की पहली रात में उस बहन की तबियत एकाएक अस्वस्थ हो गयी। अजमेर के प्रसिद्ध डॉ० सूर्यनारायण आदि ने कहा-- बहन की स्थिति गम्भीर है। बाहर के बहुत से सज्जन जो उसके सम्बन्धी थे, वे भी आये हुए थे। बहन की गम्भीर स्थिति के कारण सारा वातावरण, प्रसन्नता के स्थान पर गम्भीर हो गया था। प्रातः भाई आए। उनके चहरे मुरझाए हुए थे। गुरुदेव ने पूछा—आज तो प्रसन्नता का दिन है; पर चहरे पर उदासी कैसे? उन्होने बताया कि बहन की स्थिति नाजुक है। यदि तपस्या मे ही उसका स्वर्गवास हो गया तो जैन धर्म की निन्दा होगी कि जैनी लोग तप करवाकर लोगो को मार देते है। यही चिन्ता मन को सता रही है। रात के बारह बजे से बहन बेहोश पडी हुई है। गुरुदेव ने धैर्य बँधाते हुए कहा—धर्म के प्रसाद से सब अच्छा हो जायगा। गुरुदेवश्री उनके वहाँ पर पधारे। दो मिनट तक गुरुदेवश्री ने कुछ सुनाया। बहन उठ बैठी। पूर्ण स्वस्थ होकर उसने आहारदान दिया। सर्वत्र प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो गयी।

आपश्री अपने पूज्य गुरुदेव के साथ सन् १९३६ मे बडौदा से सूरत पधार रहे थे। रास्ते मे मीलो तक हिन्दुओ की बस्ती नही है। सभी मुसलमानो के गाँव हैं। नवीपुरा के कपास की मील मे एक ब्राह्मण भोजन बनाने वाला था। आपश्री को उसके यहाँ से भोजन मिल गया, किन्तु ठहरने के लिए स्थान नही मिला। भडौच वहाँ से बारह मील था। अतः वहाँ पहुँचना भी सम्भव नही था। आपने इधर-उधर देखा। एक मुसलमान ने पूछा—क्या देखते हो बाबा! आपश्री ने बताया हमे रात्रिविश्राम के लिए जगह चाहिए। उसने कहा—देखिए, यह सामने जो भव्य भवन है, वह मेरा ही है। आप आराम से वहाँ रात्रि भर ठहर सकते है। महाराज साहब ने देखा, मियाँ साहब बहुत ही सज्जन हैं। उन्होने ठहरने के लिए बहुत सुन्दर स्थान बताया है। बगला बहुत ही बढिया बना हुआ था। आप वहाँ पर जाकर ठहरे। उस समय आप और आपके गुरुदेवश्री ताराचन्दजी महाराज दो ही सन्त थे। तीसरे पण्डित रामानन्द जी शास्त्री थे। अधेरी रात्रि थी। बगला कुछ जगल मे था। अत. पण्डित जी एक दुकान से लालटेन किराये पर लाये। उन्होने महाराजश्री से कहा—मैं अधेरे मे नही रह सकता हूँ। आप एक तरफ सोयेंगे, मैं दूसरी तरफ सो जाऊँगा। गुरुदेव ने कहा—जहासुहं देवाणुप्पिया! रात्रि के नौ बजे तक आपश्री पण्डितजी से ज्ञान चर्चा करते

रहे। गुरुदेव ने पण्डितजी से कहा—ध्यान रखना, यह वगला इतना सुन्दर है फिर भी लोग यहाँ पर नही रहते है। लगता है, बंगले मे कुछ उपद्रव है। महाराजश्री तो ध्यान और जपादि कर लेट गये। महाराजश्री को ज्यो ही नीद आने लगी त्यो ही एक भयकर चीत्कार सुनायी दी। महाराजश्री ने बैठकर देखा—पण्डितजी का दीपक टिमटिमा रहा था और पण्डितजी बुरी तरह से चिल्ला रहे थे। महाराजश्री ने सन्निकट जाकर पण्डितजी को पुकारा—पण्डित जी का शरीर पसीने से तरवतर हो रहा था। हृदय धड़क रहा था। पण्डितजी ! क्या वात है ? महाराज एक वहुत ही डरावनी सूरत मेरी छाती पर आकर वैठ गई और मुझे मारने लगी। महाराजश्री ने उन्हे आश्वस्त किया और कहा पण्डितजी ! सम्भव है आपका हाथ छाती पर पडा रहा हो जिससे आपके मन में भय पैदा हो गया है, घबराइए नही।

पण्डितजी ने कहा—नही महाराज ! साक्षात् यम ही मेरी छाती पर वैठा था। मैं अव इस स्थान पर न सोऊँगा। पण्डितजी गुरुदेव के सन्निकट आकर सो गये। उन्होने दीपक भी अपने पास ही रख लिया था। गुरुदेव को ज्यो ही नीद आयी त्यो ही दुवारा पुन' पण्डितजी चीख पड़े। गुरुदेव ने देखा—दीपक का प्रकाश जो बिल्कुल ही मन्द हो चुका था, वह धीरे-धीरे पुनः तेज हो रहा था और पण्डित जी थरथर काँप रहे थे। इस वार पहले की अपेक्षा अधिक घवराए हुए थे। घडी मे देखा तो बारह वजे थे। गुरुदेव ने कहा—पण्डितजी ! यह इसी मकान का चमत्कार है, पर अब घवराने की आवश्यकता नही है। आपका कुछ भी वाल वॉका नही होगा। गुरुदेव ने कुछ क्षणो तक ध्यान किया और रजोहरण से रेखा खीचकर पण्डितजी से कहा—अव आपको कुछ भी कष्ट नही होगा। चाहे कैसा भी दानव क्यो न हो, वह आपको कष्ट नही देगा।

पण्डितजी ने कहा—गुरुदेव ! अव मैं एक तरफ नही सो सकता। अव दोनो सन्तो के वीच मुझे सुला दीजिए। गुरुदेव ने परिस्थिति पर विचार कर पण्डितजी को वीच मे सुला दिया। गुरुदेव तो प्रतिदिन के नियमानुसार दो वजे उठकर ध्यान मे विराज गये और पण्डितजी आराम से सोते रहे। सुवह विहार कर भडोच जाना था। मकान की आज्ञा पुन. लौटाने के लिए ज्यो ही उस मुसलमान भाई के यहाँ गये त्यो ही वह आपको देखकर हैरान हो गया और वोला—क्या तुम लोग रात को जिन्दा रह गये ? गुरुदेव ने मुसलमान भाई को समझाया कि इस तरह से दुष्टतापूर्ण व्यवहार करना उचित नहीं है। "अल्लाह अल्लाह खैर सल्लाह" हम तो वच गये। दूसरो के साथ

कभी भी ऐसा मजाक मत करना। वह मुसलमान आपकी आध्यात्मिक शक्ति देखकर चरणो मे गिर पडा। उसने कहा—महाराजजी ! उस मकान मे जिन्द रहता है जो रात्रि में किसी को भी नही रहने देता। यदि वहाँ भूल से कोई रह जाय तो वह उसे खतम कर देता है। मैंने यही सोचा था कि हिन्दू काफिर होते है और आपको मरवाने की भावना से ही मैंने आपको वह मकान बताया था। अब आश्चर्य है कि उस अद्भुत दानवी शक्ति से आप कैसे बच निकले। अब मुझे अपनी दुष्टता पर पश्चात्ताप हो रहा है कि मैंने एक सच्चे फकीर को कष्ट दिया। आप मेरे दुष्टतापूर्ण व्यवहार को क्षमा करें। भविष्य में कभी मैं ऐसा व्यवहार अन्य किसी भी व्यक्ति के साथ नही करूँगा।

सन् १९४८ की घटना है। पूज्य गुरुदेव घाटकोपर बम्बई का वर्षावास पूर्णकर नासिक सघ के अत्याग्रह को मानकर नासिक पधारे और वहाँ से सूरत की ओर प्रस्थान किया। सतपुड़ा की विकट पहाडियो के कंटकाकीर्ण पथ को पारकर आप वासदा पधारे। वहाँ पर जैन मुनि २२ वर्षों के पश्चात् गये थे। अतः सघ में अपार उत्साहपूर्ण वातावरण था। आप वहाँ पर दो दिन विराजे और वहाँ से नवसारी की ओर प्रस्थान किया। अपराह्न का समय था। पग-डण्डियो के मार्ग से विहार यात्रा चल रही थी। सडक नही थी। सामने से आने वाले व्यक्ति से लक्ष्य स्थल के सम्बन्ध मे पूछा तो उसने कहा—वह स्थान यहाँ से लगभग दो गाऊ है। दो गाऊ से तात्पर्य था चार मील का। गुरुदेव ने सोचा, चार मील तो अभी-अभी पहुँच जायेगे, किन्तु चार मील जाने पर एक व्यक्ति से जिज्ञासा व्यक्त की तो उसने बताया—चार मील है। कदम तेजी से बढाये गये लक्ष्य स्थल तक पहुँचने के लिए किन्तु चार मील पहुँचने के बाद भी वही पुराना उत्तर मिला कि चार मील दूर है। द्रौपदी के चीर की तरह मार्ग लम्बा होता चला जा रहा था। बारह मील चलने पर भी रुकने का स्थान नही आया। तब आपश्री ने मुझे कहा—देवेन्द्र ! सूर्य अस्ताचल की ओर अपने कदम तेजी से बढा रहा है। चारो ओर पहाडियाँ है जिससे गाँव दिखाई नही दे रहे है। अब हम आगे नही बढ सकते। किसी वृक्ष के नीचे ही आज रात्रि को विश्राम लेना होगा। चारो ओर हरा-भरा-वन था, पहाडियाँ थी और सन्निकट ही ताप्ती नदी बह रही थी, जिससे कलकल-छल-छल मधुर ध्वनि आ रही थी।

गुरुदेवश्री ने एक आम्रवृक्ष के नीचे साथ मे जो भाई था उसकी आज्ञा ग्रहण कर वहाँ आसन जमा दिया। सन्ध्या की सुहावनी लालिमा धीरे-

धीरे अन्धकार में बदल रही थी। तभी दनादन पत्थर आने लगे। हमने देखा टेकरी पर जो झोपड़ियाँ थी, वही से पत्थर आ रहे थे। किन्तु कोई भी पत्थर आपको न लगा। ज्यो-ज्यो अन्धकार बढने लगा, त्यो-त्यो पत्थर आने वन्द हो गये। गुरुदेव ने कहा—आज का यह एकान्त शान्त स्थान जप-साधना के लिए वहुत ही श्रेष्ठ है। प्रतिक्रमण आदि आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर गुरुदेव जप-साधना मे बैठ गये। रात्रि के लगभग नौ बजे होगे, दस पन्द्रह पुलिसमैनों को लेकर थानेदार वहाँ पर आया, जहाँ पर गुरुदेवश्री ध्यान मे विराजित थे। आते ही उसने गरजते हुए कहा—यहाँ क्यो वैठे हो? पास के गांव में पुलिस का थाना है वहाँ चलो। गुरुदेवश्री ने ध्यान से निवृत्त होकर कहा—हम जैन श्रमण हैं और रात्रि को परिभ्रमण नही करते है। किन्तु वह तो अधिकार के नशे मे मत्त बना हुआ था, उसने अधिकार की भाषा मे कहा—तुम्हे अभी उठकर हमारे साथ चलना होगा। गुरुदेव ने कहा—चाहे आप कितनी ही धमकी दे, उस धमकी का हमारे पर कोई असर नही होगा। हमारी मर्यादा है। हम रात्रि मे नही चलते। उसने गुरुदेवश्री की निर्भीकता को देखकर पूछा—बताइए! आपका क्या परिचय है? गुरुदेव ने कहा—हम जैन साधु हैं। साधुओ का क्या परिचय? वे तो घुमक्कड होते है। हिमालय से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक वे पैदल घूमते हैं और धर्म-प्रचार करते हैं। उसने कहा—बताइए! आप यहाँ किसको जानते हैं? गुरु-देव ने कहा—वम्बई की जो विधान सभा है उसके स्पीकर भाऊ साहब फिरो-दिया हमारे शिष्य है। उसने कहा इतनी दूर का नही, सन्निकट का कोई परिचित हो तो वताओ। तव गुरुदेव ने कहा—वासदा के नगरसेठ इन्द्रमल जी हमारे शिष्य है। हम लोग उनके गुरु है। नगरसेठ का नाम सुनते ही थानेदार ने चरण स्पर्श करते हुए कहा—मुझे क्या पता था कि आप उनके गुरुदेव है। आज प्रात: ही नगरसेठ का फोन था कि हमारे गुरु आ रहे है, आप उनका ध्यान रखना। उन्हे किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। हमने आपके लिए ठहरने की स्पेशल व्यवस्था करवायी। किन्तु आप इस भयकर जगल मे विराज गये। सन्निकट की टेकडियो के निवासी आदिवासियो ने आपको भगाने के लिए पत्थर फैंके। उन्होने आपको डाकू समझा था और भयभीत होकर हमारे पास आये और कहा—दो मुँहवँधे आये है, जो रात को हमारी वच्चियो व पत्नियो को लेकर भाग जायेंगे। इसीलिए हम आपको पकडने के लिए आये थे, किन्तु आपके पावन दर्शन कर हमारी सभी शंकाएँ निर्मूल हो गयी। पर यह स्थान वहुत ही भयावह है। रात को पानी पीने हेतु ताप्ती

नदी पर शेर आदि जानवर आया करते है। अतः पास ही मे एक मील पर ही गाँव है, वहाँ पधार जायँ।

गुरुदेव ने अपना दृढ़ निश्चय बताते हुए कहा—कोई भी जानवर क्यो न आये; पर हम रात्रि मे यहाँ से अन्यत्र नही जायेगे। गुरुदेवश्री के दृढ निश्चय को देखकर थानेदार ने कहा—हम यहाँ पर सो नही सकते पर कुछ आदि-वासियो को यहाँ पर रखकर जाता हूँ। गुरुदेवश्री ने कहा—किसी को रहने आवश्यकता नही है। वे नमस्कार कर चले गये।

रात्रि का एक बजा होगा। एक नवहत्था केसरीसिंह दहाडता हुआ गुरुदेवश्री के पास होकर निकला। एक क्षण रुककर उसने गुरुदेवश्री को देखा और पानी पीने के लिए चल दिया। पानी पीकर पुन आया और दहा-ड़ता हुआ आगे बढ गया, किन्तु आपश्री को किसी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाया। उस रात्रि मे अनेक जानवर भी उधर से निकले किन्तु किसी का भी उपद्रव नही हुआ। गुरुदेवश्री उस रात्रि को रात भर जप की साधना करते रहे, वस्तुतः 'अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्यागः।'

इसी प्रकार अन्य कई स्थानो पर विहार में आपको रात्रि विश्राम के लिए भयंकर जंगलो में समय बिताना पड़ा, जहाँ पर भयकर पशुओं का उप-द्रव था। नान्देशमा ग्राम में आपका सन् १९५० में चातुर्मास था। वह पचा-यती मकान जहाँ पर अत्यधिक हरियाली थी, वहाँ पर आपका वर्षावास हुआ। उस मकान मे आठ-दस सर्प रहते थे। कई बार आपश्री के पैरो के बीच मे भी आ गये, किन्तु उन्होने कभी कोई कष्ट नही दिया।

जहाँ हृदय में प्रेम का पयोधि उछालें मार रहा हो, वहाँ पर हिंसक पशुओ का व जीव-जन्तुओ का कोई कष्ट नही होता। वे भी आध्यात्मिक शक्ति के सामने वैर-भाव भूल जाते है।

संगठन के दृढ चरण

श्रद्धेय गुरुवर्य स्थानकवासी जैन समाज के एक मूर्धन्य मनीषी और कर्मठ सन्त हैं। स्थानकवासी समाज की उन्नति किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध मे आपश्री का प्रारम्भ से ही चिन्तन चलता रहा। गहराई से इस सम्बन्ध मे आपश्री सोचते रहे और समय-समय पर समाज की एकता के लिए प्रयास करते रहे।

श्रमण भगवान महावीर के परिनिर्वाण के १७० वर्ष के पश्चात् पाटलिपुत्र मे सर्वप्रथम सन्त सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में द्वादशवर्षीय

भीषण दुष्काल के कारण श्रमण-संघ जो छिन्न-भिन्न हो गया था, अनेक बहु-श्रुत श्रमण काल कर गये थे, दुष्काल के कारण यथावस्थित सूत्र परावर्तन नही हो सका था। अत दुष्काल समाप्त होने पर सभी विशिष्ट सन्त पाटलि-पुत्र मे एकत्रित हुए। उन्होने ग्यारह अंगो का संकलन किया था। वारहवें अंग दृष्टिवाद के ज्ञाता भद्रबाहु स्वामी उस समय नेपाल में महाप्राणध्यान की साधना कर रहे थे। उन्होने सघ की प्रार्थना को सन्मान देकर मुनि स्थूलिभद्र को वारहवें अग की वाचना देने की स्वीकृति दी। स्थूलिभद्र मुनि ने वहनो को चमत्कार दिखाया, जिससे अन्तिम चार पर्वो की वाचना शाब्दिक दृष्टि से उन्हे दी गई।

द्वितीय सम्मेलन ई० पूर्व द्वितीय शताब्दी के मध्य मे हुआ था। सम्राट खारवेल जैन धर्म के उपासक थे। हाथी गुफा के अभिलेख से यह प्रमाणित हो चुका है कि उन्होने उड़ीसा के कुमारी पर्वत पर जैन मुनियो का एक सघ बुलाया था।

तृतीय सम्मेलन मथुरा मे हुआ। यह सम्मेलन वीर निर्वाण संवत् ८२७ से ८४० के मध्य मे आचार्य स्कन्दिल के नेतृत्व मे हुआ। उसी समय दक्षिण और पश्चिम मे जो सघ विचरण कर रहे थे उनका सम्मेलन वल्लभी मे आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता मे हुआ। यह चौथा सम्मेलन था।

पाँचवाँ सम्मेलन वीर निर्वाण की दसवी शताब्दी ई० सन् ४५४—४६६ के मध्य मे वल्लभी मे हुआ था। इस सम्मेलन के अध्यक्ष देवर्धिगणी क्षमाश्रमण थे।

इन पाँचो सम्मेलनो मे आगमो के सम्बन्ध मे ही चिन्तन-मनन किया गया, क्योकि स्मृति की दुर्वलता, परावर्तन की न्यूनता, धृति का ह्रास और परम्परा की व्यवच्छित्ति प्रभृति अनेक कारणो से श्रुत साहित्य का अधिकाश भाग नष्ट हो गया था। उसे पुनः व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। उसके पश्चात् आगमो की वाचना को लेकर कोई सम्मेलन न हुए।

आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज के समय पचेवर ग्राम मे एक सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन का उद्देश्य श्रुत के सम्बन्ध मे चिन्तन नही किन्तु पारस्परिक क्रियाओ को लेकर पूज्य श्री कानजी ऋषि जी महाराज के सम्प्रदाय के अनुयायी पूज्य श्री ताराचन्द जी महाराज, जोगराज जी महाराज, मोवाजा महाराज, श्री त्रिलोकचन्द जी महाराज, आर्या जी श्री

राधा जी, पूज्य श्री हरिदास जी महाराज के अनुयायी मलूकचन्द जी महाराज, आर्या फूलाजी महाराज, तथा पूज्य श्री परशुरामजी महाराज के अनुयायी श्री खेतसी व खीवसी जी महाराज और आर्या श्री केसरजी महाराज आदि सभी सन्त-सतीगण गम्भीर विचार-चर्चा के पश्चात् आचार्य श्री अमरसिंह जी महाराज के साथ एक सूत्र मे बँध गये।

उसके पश्चात् राजस्थान प्रान्तीय मुनियो का सम्मेलन पाली में सन् १९०२ मे हुआ। सगठन की एक लहर पैदा हुई, और सन् १९३३ में अजरामपुरी अजमेर मे एक विराट सन्त सम्मेलन का आयोजन हुआ। उस सम्मेलन मे स्थानकवासी समाज के मूर्धन्य सन्तगण पधारे। उस सम्मेलन मे पूज्य गुरुदेवश्री नीव की ईंट के रूप मे रहकर कार्य करते रहे। समाज के बिखरे हुए तारो को मिलाने मे आपश्री ने अपनी शक्ति का उपयोग किया। वह सम्मेलन यद्यपि पूर्ण सफल न हो सका तथापि सगठन के एक सुन्दर वातावरण का निर्माण हुआ और ऐसे अनेक प्रस्ताव पारित हुए जिनसे स्थानकवासी समाज का भविष्य अत्युज्ज्वल दिखाई देने लगा। आप श्री का सदा चिन्तन चलता रहा है कि ऐसा प्रयास किया जाय जिससे श्रमणो का एक सगठन बन जाय, क्योकि सगठन ही जीवन है और विघटन ही मृत्यु है।

बिना सगठन के समाज प्रगति नही कर सकता। आपश्री के प्रबल पुरुषार्थ से ही सन् १९५२ में सादडी सन्त सम्मेलन हुआ। क्योकि सम्मेलन के पूर्व आपश्री का सादड़ी मे वर्षावास था। स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के अधिकृत अधिकारीगण हताश व निराश हो गये थे। क्योकि जितने भी अन्य स्थानो से सम्मेलन के लिए प्रार्थनाएँ आयी थी वे सभी प्रार्थनाएँ स-शर्त थी। अत. विचारको के सामने प्रश्न था कि सम्मेलन कहाँ कराया जाय? यदि उनकी शर्ते पूरी न हो तो सम्मेलन होना सम्भव नही हो सकता। किन्तु आपश्री ने कहा—सादडी सम्मेलन के लिए उपयुक्त स्थल है। यह पावन भूमि है। यहाँ पर आप सम्मेलन करें। आपने अपने ओजस्वी और तेजस्वी प्रवचनो से स्थानीय सघ मे सम्मेलन की भव्य भूमिका तैयार की और इतना शानदार सम्मेलन हुआ कि सभी देखकर विस्मित हो गये। उस सम्मेलन मे आपने अत्यधिक पुरुषार्थ किया जिसके फलस्वरूप श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ का निर्माण हुआ। इस सम्मेलन मे लगभग ५० हजार नर-नारी बाहर से एकत्रित हुए थे। आपश्री के सद्गुरुदेव श्री महास्थविर ताराचन्द जी महाराज सभी सन्तो मे उस समय सबसे बडे थे। विभिन्न

सम्प्रदायो की सरिताएँ श्रमण-सघ के महासागर मे विलीन हो गयी। संगठन के लिए सभी पदवीधारी मुनिराजो ने अपनी पदवियो का परित्याग किया और सर्वानुमति से परम श्रद्धेय जैनागम वारिधि श्री १००८ आत्माराम जी महाराज को आचार्य पद प्रदान किया गया और आगममर्मज्ञ श्री गणेशीलाल जी महाराज को उपाचार्य पद दिया गया और पं० प्रवर आनन्द ऋषि जी महाराजा को प्रधानमन्त्री पद प्रदान किया गया। सोलह विद्वान् मुनिराजो का एक मन्त्रिमडल वनाया गया, जिसमे श्रद्धेय गुरुदेव को साहित्य शिक्षण मन्त्री पद दिया गया। आपश्री ने विलक्षण प्रतिभा, सूझ-वूझ, सगठन शक्ति और विचार गाभीर्य से सम्मेलन की सफलता हेतु अथक प्रयास किया, जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है।

उसके पश्चात् सोजत मन्त्रिमण्डल की वैठक भीनासागर सम्मेलन (१९५५), अजमेर शिखर सम्मेलन (१९६४) और सांडेराव राजस्थान प्रान्तीय सम्मेलन (१९७१) में आपश्री ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। श्रमण संघ अखड वना रहे इस हेतु आपका अथक प्रयास रहा। और उसके लिए आपश्री ने लम्वे-लम्वे विहार भी किये और जी-जान से प्रयास भी किये। आपश्री चाहते हैं कि श्रमण संघ आचार-विचार दोनो ही दृष्टियो से उत्कृष्ट हो। श्रमणों की शोभा शास्त्रीय मर्यादाओ का पालन करने मे है। मर्यादाओ का अतिक्रमण उचित नही है।

स्थानकवासी समाज मे ही नही किन्तु सम्पूर्ण जैन समाज में आपश्री एकता देखना चाहते है। वेंगलोर के सन् १९७७ के भारत जैन महामण्डल के लघु अधिवेशन में प्रवचन करते हुए आपने कहा कि फूट ने हमारा कितना पतन किया है। सम्प्रदाय रहे किन्तु सम्प्रदायवाद न रहे। एक परिवार के रहने के लिए मकान मे पृथक्-पृथक् कमरे होते है, जहाँ व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से रह सकता है। किन्तु मकान मे ऐसा एक हाल होता है, जहाँ घर के सभी सदस्य वैठकर वार्तालाप व चिन्तन कर सकते हैं। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, तेरापन्थी व दिगम्बर परम्पराएँ भले ही रहे किन्तु एक ऐसा मच होना चाहिए जहाँ वैठकर अपने हृदय की वात कह सकें और जैन धर्म के विकास के लिए प्रयास कर सकें। सम्प्रदाय उतना बुरा नही, जितना सम्प्रदायवाद वुरा है। सम्प्रदायवाद के काले चश्मे ने हमारे को सत्य तथ्य को पहचानने नही दिया। इसलिए सम्प्रदायवाद को समाप्त कर शुद्ध जैनत्व को अपनाएँ।

आपश्री एक ओर समीचीन नवीन विचारो को ग्रहण करने के पक्षपाती हैं, दूसरी ओर आपको पुराने विचारो से भी प्यार है। नवीनता और

प्राचीनता ये दोनो प्रगति के दो पैर हैं। एक उठा हुआ है और दूसरा टिका हुआ है। आप दोनो पैर आकाश में उठाकर उडना भी नही चाहते और न पैर पृथ्वी पर टिकाकर स्थिर रहना चाहते है। वे निरन्तर और निर्बाध दोनों प्रगति करना चाहते हैं। उसका क्रम यही है—कुछ गतिशील हो, कुछ स्थिर हो। गति पर स्थिति का और स्थिति पर गति का प्रभाव गिरता रहे। कुछ लोग नई वात से कतराते है और पुरानी बात से चिपटे रहते है। उनके अन्तर् मे पुराने के प्रति विश्वास और नये के प्रति अविश्वास होता है। किन्तु आप प्राचीनता की भूमि पर अवस्थित होकर नवीनता का स्वागत करने मे सकोच नही करते। वस्तुतः आप नवीनता और प्राचीनता के बीच मे पुल है जो दोनो तटों को मिलाता है। आपश्री मे हठवादिता नही है, किन्तु गहन चिन्तनशीलता और दूसरे व्यक्तियो व सम्प्रदायो के प्रति सहनशीलता है। आपका जीवन मूर्च्छित और परास्त नही है किन्तु उसमे आस्था का अमर आलोक है और सामर्थ्य का मधुर संगीत है। □□

३ कुछ विशिष्ट सम्पर्क एवं विचार-चर्चाएँ

श्रद्धेय सद्‌गुरुवर्य का सम्पर्क जितना जन-साधारण से रहा उतना ही विशिष्ट व्यक्तियो से भी है। सन्त होने के नाते धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक दलबन्दी से आप दूर है। किन्तु आपका परिचय प्राय उन सभी व्यक्तियो से है, जो देश के प्रमुख चिन्तक है, विचारक है, साहित्य-सस्कृति और धर्म के प्रति आस्थावान है। आप चिन्तन के आदान-प्रदान मे विश्वास करते है और अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनो ही बातो को सुनने के अभ्यस्त हैं। यदि किसी के कथन मे कुछ सार तत्त्व रहा हुआ है तो उसे ग्रहण करने मे आप सकोच नही करते।

यह सत्य है कि आपश्री की स्थानकवासी सस्कृति के प्रति प्रबल आस्था है, उसे आप महान् क्रान्तिकारी विशुद्ध आध्यात्मिक विचारधारा और आचार का प्रतीक मानते हैं, तथापि भ्रान्त धारणाओ और रूढिवाद से आप सर्वथा दूर हैं। आपका मानस उदार है। समाज के विभिन्न क्षेत्रो मे सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्ता जिज्ञासुगण, विचारक, आपश्री के निकट सम्पर्क मे आये हैं। आपश्री भी उनसे आत्मीयता के साथ मिले हैं और आपश्री के स्नेह-सौजन्यतापूर्ण व्यवहार से वे प्रभावित हुए हैं। यहाँ पर कतिपय विशिष्ट व्यक्तियो के सम्पर्क के कुछ सस्मरण प्रस्तुत हैं।

गुरुदेवश्री और राष्ट्रपति

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद आध्यात्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के प्रति उनमे अपूर्व निष्ठा थी। उनमे गम्भीर विद्वत्ता थी और सर्वोच्च पद पर आसीन होने पर भी उनमे दर्शनीय नम्रता थी। आपश्री से वे दिल्ली मे सम्पर्क मे आये, और अनेक विपयो पर वार्तालाप हुआ। आपश्री ने बताया कि भारतीय जनता के अपूर्व धैर्य, लगन और कर्तव्यपरायणता के कारण देश सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हुआ है, और उस स्वतन्त्रता का सम्पूर्ण श्रेय काग्रेस को है। देश को स्वराज्य मिल गया है। उसे सुराज्य बनाना है और उसके लिए आवश्यकता है पवित्र

चरित्र की। एक दिन भारत अपनी चारित्रिक गरिमा के कारण विश्वगुरु जैसे गौरवमय पद पर अलकृत था; किन्तु आज हमारी स्थिति अत्यधिक दयनोय है। जब तक नैतिक स्तर न उठेगा वहाँ तक देश की सही प्रगति नही हो सकती। नैतिकता के अभाव में कही जनतन्त्र जमतन्त्र न वन जाय, यही चिन्ता है। अतः नैतिक दृष्टि से देश को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। साथ ही प्राचीन साहित्य और सस्कृति की ओर भी आपश्री ने उनका ध्यान आकर्षित किया और जैनाचार्यों द्वारा विविध भापाओ मे की गई साहित्य सेवा का परिचय दिया। जैन साहित्य किसी सम्प्रदाय विशेष की नही, मानवमात्र की परम उपलब्धि है। उस साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार हो, यह अपेक्षित है। गुरुदेवश्री के मूल्यवान् सन्देश से राजेन्द्र वाबू बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होने कहा—मेरा भी जन्म उसी पावन भूमि में हुआ है जहाँ पर भगवान् महावीर का हुआ था। और फिर आशोर्वाद प्राप्त कर राजेन्द्र बाबू ने प्रस्थान किया।

गुरुदेवश्री और प्रधानमन्त्री श्री नेहरू

४ दिसम्बर सन् १९५४ को श्रद्धेय गुरुदेवश्री का भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू से दिल्ली में विचार-विमर्श हुआ। वार्तालाप का प्रारम्भ करते हुए गुरुदेव ने कहा—भगवान महावीर विश्व की महान् विभूति थे। उनका आचार उत्कृष्ट था, विचार निर्मल था, उन्होने साधना कर अपने जीवन को निखारा था। भगवान महावीर ने आचार मे अहिंसा और विचार में अनेकान्त जैसे दिव्य सिद्धान्त प्रदान किये। किन्तु आज हम उनका जन्म या स्मृति दिवस भी मनाने के लिए तैयार नही है। शासन को चाहिए ऐसे महापुरुष की स्मृति में एक दिन अवकाश रखा जाय।

नेहरूजी—आपका सुझाव उपयुक्त है। मैं इस सम्बन्ध मे चिन्तन करूँगा। मैं स्वयं भगवान महावीर को महापुरुष मानता हूँ। और यह भी मानता हूँ कि उनकी अहिंसा का प्रभाव राष्ट्रपिता पर था।

उसके पश्चात् श्रमण सस्कृति को विभिन्न धाराओ के सम्बन्ध मे और जैन सस्कृति एवं कला पर चर्चा चलो। तब गुरुदेवश्री ने ज्योतिर्धर आचार्य जोतमलजो द्वारा बनाई गई कलाकृतियाँ बतायी। एक चने के दाल जितने स्थान पर चित्रित एक सौ आठ हाथो, सूर्यपल्ली और दोनो ओर कटिंग किये हुए अक्षरो को देखकर नेहरूजी बहुत हो प्रभावित हुए। पचपन मिनट तक बहुत हो उल्लास के क्षणो मे वार्तालाप होता रहा।

उस समय श्रोमती इन्दिरा गाधी तथा उनके दोनो पुत्र राजीव और सजय

गुरुदेवश्री के सम्पर्क मे आये। वे भी कलाकृतियो को देखकर बहुत ही प्रसन्न और प्रभावित हुए।

गुरुदेवश्री और प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई

दिनाक १५-६-१९७४ को भारत के प्रधानमन्त्री (ये सन् १९७७ मे प्रधानमत्री बने) श्री मोरारजी भाई देसाई से आपश्री की विचार-चर्चायें हुई। उस दिन मोरारजी देसाई मेरे द्वारा लिखित—'भगवान महावीर: एक अनुशीलन' ग्रन्थ का अहमदाबाद मे विमोचन के लिए उपस्थित हुए थे। गुरुदेवश्री ने अपने प्रवचन मे कहा—आज चारो ओर अशान्ति का वातावरण है। आज का मानव भौतिकवादी है। अध्यात्मवाद को विस्मृत होकर वह भौतिकवाद की ओर द्रुतगति से दौड रहा है। वह त्याग से भोग की ओर, अहिंसा से हिंसा की ओर, अपरिग्रह से परिग्रह की ओर द्रुतगति से कदम बढा रहा है। वस्तुतः मानव का प्रस्तुत अभियान आरोहण की ओर नही, अवरोहण की ओर है। उत्थान और विकास की ओर नही किन्तु पतन और विनाश की ओर है। भौतिक दृष्टि से अत्यधिक उन्नति करने पर भी मानव का हृदय व्यथित है। भगवान महावीर ने अन्तर्दर्शन की प्रेरणा दी। आज मानव अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह के सिद्धान्त को विस्मृत हो चुका है। भारत के तीन पर्यटक अमेरिका पहुँचे और न्यूयार्क के एक होटल में ठहरे। उन्हे रहने के लिए होटल के ५२वी मजिल पर कमरा मिला। वे दिन भर शहर के दर्शनीय स्थानो को देखते रहे। रात्रि को सिनेमा का शो देखने के पश्चात् एक बजे वे होटल में पहुँचे। द्वारपाल ने कहा—इस समय बिजली चली गयी है, इस कारण लिफ्ट बन्द पडी है। पता नही, बिजली प्रातःकाल तक आये या न आये। उन्होने सोचा रात भर कहाँ बैठे रहेगे? इससे तो अच्छा है सीढियो से ही ऊपर चढ जायँ। सीढियाँ चढने मे शरीर मे गरमी आ जायेगी। बडे मोटे ओवरकोट पहने हुए हैं, उन्हे द्वारपाल को देवें और यो ही सीढियाँ चढें। ओवरकोट देकर वे सीढियाँ चढने लगे। उनमे से एक सज्जन ने कहा—बावन मजिल चढना कोई हँसी मजाक का खेल नही है अतः एक व्यक्ति कहानी कहता चले जिससे चढ़ने मे थकान का अनुभव न हो। प्रथम व्यक्ति ने कहानी प्रारम्भ की। उसकी कहानी बहुत ही बढिया और लम्बी थी जिससे इकत्तीस मजिल पार हो गयी। दूसरे व्यक्ति ने कहानी प्रारम्भ की, जिससे बीस मंजिल पार हो गयी। अब कहानी कहने की बारी तीसरे व्यक्ति की थी। उसके साथियो ने कहा—भाई! अब तो कहानी प्रारम्भ कर। उसने कहा—मेरी कहानी बहुत छोटी है, सिर्फ एक मिनट की भी नही है। एक सीढी अवशेष रहने पर उसने बताया कि कमरे की चाबी

ओवरकोट मे ही नीचे रह गई है। बावन मंजिल चढ़ने पर भी चाबी नीचे रह जाने से उनकी सारी मेहनत निरर्थक चली गयी और हताश व निराश होकर उन्हे पुनः नीचे लौटना पडा। आज का मानव भी इसी तरह प्रगति कर रहा है। किन्तु शान्ति की चाबी नीचे रह गई है जिससे सही प्रगति नही हो पा रही है। भगवान महावीर ने इसी चाबी का रहस्य बताया है।

उसके पश्चात् मोरारजी भाई से अन्य विषयो पर भी चर्चा हुई। उन्होंने ग्रन्थ की महत्ता पर और भगवान् महावीर के जीवन एवं सिद्धान्त पर लगभग पौन घण्टे तक भाषण दिया और गुरुदेवश्री से वार्तालाप कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

गुरुदेव और गृहमन्त्री पतजी

सोजत सन्त सम्मेलन के सुनहले अवसर पर तत्कालीन केन्द्रीय गृह-मन्त्री प० गोविन्द वल्लभ पन्त के साथ गुरुदेवश्री की विचार-चर्चाएँ हुई। आपने कहा—जैन सस्कृति का मूल आधार है—अहिसा और अनेकान्तवाद। जैसे वेदान्त सिद्धान्त का केन्द्रबिन्दु अद्वैतवाद और मायावाद है, सांख्यदर्शन का मूल आधार प्रकृति और पुरुष का विवेकवाद है, बौद्धदर्शन का केन्द्र-बिन्दु विज्ञानवाद और शून्यवाद है, वैसे जैन सस्कृति और धर्म का मूल आधार अहिसावाद और अनेकान्तवाद है। अन्य धर्मों ने भी अहिसा के सम्बन्ध मे चिन्तन किया किन्तु वे जैन दर्शन जितना सूक्ष्म विवेचन और गहन विश्लेषण नही कर सके। जैन दर्शन के अनुसार केवल धार्मिक क्रियाओ मे ही अहिसा का सुन्दर विधान नही है अपितु जीवन के दैनिक व्यवहार मे भी अहिसा का सुन्दर विधान है। राष्ट्रपिता गाधीजी ने राजनीति के क्षेत्र मे अहिसा का प्रयोग करके देश को नयी दिशा दी। आज इस अणुयुग मे अणु-शक्ति की भयकरता से सन्त्रस्त समस्त मानव परिवार ही नही किन्तु समग्र विश्व की सुरक्षा के लिए अहिसा की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नही रही। अहिसा मानव जीवन के लिए मगलमय वरदान है। अहिसा वाद-विवाद का नही, आचरण का सिद्धान्त है, तर्क का नही अपितु व्यवहार का सिद्धान्त है। विचारात्मक या बौद्धिक अहिसा ही अनेकान्त है और अनेकान्त दृष्टि को जिस भाषा के माध्यम से व्यक्त किया जाता है वह स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद एक दृष्टि है और स्याद्वाद उस दृष्टि को अभिव्यक्त करने की पद्धति है। यो कहा जा सकता है कि विचारो का अनाग्रह ही अनेकान्तवाद है। जब अनेकान्त वाणी का रूप ग्रहण कर लेता है तब स्यादवाद बनता है और जब आचार का रूप लेता है तो अहिसा बनती है। अहिसा और अनेकान्त एक दूसरे के पूरक है। अहिसा और अनेकान्त के सम्बन्ध में जैनाचार्यों ने अत्यन्त

विस्तार के साथ लिखा है। किन्तु आज आवश्यकता है उसे जीवन में अपनाने की। अहिंसा और अनेकान्तवाद के केवल गीत गाने से लाभ नही, किन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उसका उपयोग करने मे ही लाभ है। अहिंसा और अनेकान्त मे वह अपूर्व शक्ति है, जो हमारे जीवन के कालुष्य और मालिन्य को दूर कर जीवन को चमका सकती है।

इस प्रकार गुरुदेवश्री के मौलिक विचारो को सुनकर पन्तजी प्रभावित हुए और कहा—जैनदर्शन की अहिंसा और अनेकान्त भारतीय दर्शन को अपूर्व देन है।

गुरुदेव और राजर्षि टण्डन जी

श्रद्धेय गुरुवर्य सन् १९५४ में दिल्ली मे वर्षावास हेतु विराजे थे। उस समय राजर्षि टण्डन गुरुदेवश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। औपचारिक वार्तालाप के पश्चात् धर्म और दर्शन पर विचार-चर्चा प्रारम्भ हुई। गुरुदेवश्री ने बताया—धर्म का मानव जीवन मे व्यापक और महत्त्वपूर्ण स्थान है। धर्म का सम्बन्ध आचार से है, और दर्शन का सम्बन्ध विचार से है। भारतीय सस्कृति मे आचार और विचार को एक माना है। वे एक दूसरे के पूरक हैं। आचाररहित विचार विकार है और विचाररहित आचार अनाचार है। पाश्चात्य विचारको के अभिमतानुसार रिलिजन और फिलासफी ये दोनों पृथक्-पृथक् है। किन्तु भारतीय चिन्तन की दृष्टि से धर्म और दर्शन अन्योन्याश्रित हैं। ये दो तट हैं जिनके मध्य मानव जीवन की सरिता प्रवाहित होती रहती है। किन्तु दोनो के आधार भिन्न-भिन्न हैं। धर्म श्रद्धा पर आधारित है तो दर्शन तर्क पर, किन्तु तर्क धर्म के मार्ग मे और श्रद्धा दर्शन के मार्ग मे कभी भी व्यवधान पैदा नही करती।

गुरुदेवश्री ने विषय को स्पष्ट करते हुए कहा—वेदान्त मे जो पूर्वमीमासा है वह धर्म है और उत्तरमीमांसा दर्शन है। योग आचार है तो साख्य विचार है। बौद्ध परम्परा मे हीनयान दर्शन है तो महायान धर्म है। उसी तरह जैन धर्म मे भी अहिंसा धर्म है और अनेकान्त दर्शन है। विचार मे आचार और आचार मे विचार भारतीय दर्शन का यही मौलिक चिन्तन है।

आपश्री ने वार्तालाप के प्रसग मे ही उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि पाश्चात्य सस्कृति के प्रभाव के कारण हमारे यहाँ भी धर्म और दर्शन को प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे माना जा रहा है। यह चिन्तन भारतीय दर्शनो के अनुकूल नही है। उससे लाभ नही अपितु हानि ही अधिक है। अतः इस दृष्टि से विचारो मे परिष्कार करने की आवश्यकता है।

गुरुदेव और श्री सुखाडिया जी

सद्गुरुदेव से श्री मोहनलाल जी सुखाडिया, जो राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमन्त्री थे, वे अनेको बार मिले। सर्वप्रथम वे सन् १९६४ में अजमेर शिखर सम्मेलन के अवसर पर मिले, दूसरी बार सन् १९६६ मे उदयपुर के सन्निकट तिरपाल गॉव मे मिले और लम्बे समय तक आध्यात्मिक और सामाजिक विषयो पर चर्चा की। उसके पश्चात् दिनाक ७-१०-१९७६ को रायचूर (कर्नाटक) में गुरुदेव की ६७वी जन्म जयन्ती के अवसर पर उपस्थित हुए थे। उस समय वे तमिलनाडु के राज्यपाल थे। प्रारम्भिक वार्तालाप के पश्चात् गुरुदेवश्री ने भारतीय सस्कृति पर चिन्तन करते हुए कहा—भारतीय सस्कृति वह है, जिसमे आचार की पवित्रता, विचार की गम्भीरता और कला की सुन्दरता है। सस्कृति मे धर्म भी है, दर्शन भी है, कला भी है। सस्कृति बहती हुई धारा है, जो निरन्तर विकास की ओर बढती है। संस्कृति विचार, आदर्श भावना एवं संस्कार प्रवाह का वह सुगठित सुस्थिर संस्थान है जो मानव को अपने पूर्वजो से सहज अधिगत होता है। सस्कृति मानव के भूत, वर्तमान एवं भावी जीवन का सर्वागोण चित्रण है, जीवन देने की कला और पद्धति है। संस्कृति अनन्त आकाश मे नही; किन्तु धरती पर रहती है। वह कमनीय कल्पना नही, जीवन का वास्तविक सत्य है, प्राणभूत तत्त्व है। मानवीय जीवो के नानाविध रूपो का समुदाय ही सस्कृति है। विविध प्रकार की धर्म-साधना, कलात्मक प्रयत्न, योगमूलक अनुभूति और तर्कमूलक कल्पना से उस विराट् सत्य को ग्रहण करना सस्कृति है। भारतीय सस्कृति का अर्थ है विश्वास, आचार और विचार का समन्वय अथवा स्नेह, सहानुभूति, सहयोग, सहकार, और सहअस्तित्व की जीती जागती महिमा, जिसमे राम की निर्मल मर्यादा, कृष्ण का ओजस्वी कर्मयोग, महावीर की सर्वभूत क्षेमकरी अहिसा, बुद्ध की मधुर करुणा और महात्मा गाधी की धर्म से अनुप्राणित राजनीति एव सत्य का प्रयोग है। इसलिए भारतीय सस्कृति के मूल सूत्रधार हैं—राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध और गाधी। अत इस सस्कृति का लक्ष्य है—सान्त से अनन्त की ओर जाना, अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना, भेद से अभेद की ओर जाना, कीचड से कमल की ओर जाना और विरोध से विवेक की ओर जाना।

आज हम सस्कृति के नाम पर विकृति की ओर बढ़ रहे है। भाषावाद, प्रान्तवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद से देश की स्थिति दिन-प्रतिदिन विषम होती चली जा रही है। आवश्यकता है विषमता के स्थान पर समता की

सस्थापना की जाय। जैन श्रभण भारत के विविध स्थलो पर परिभ्रमण कर इसी का सन्देश देता है।

इसी प्रकार अनेक विपयो पर गम्भीर विचार-चर्चाएँ लगभग डेढ घंटे तक चलती रही। वे गुरुदेवश्री के चिन्तनपूर्ण विचारो से अत्यधिक प्रभावित हुए।

गुरुदेव और चन्दनमल वैद

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य का सन् १९७३ मे अजमेर मे वर्पावास था। वहाँ पर १३ सितम्वर को 'विश्व मैत्री दिवस' का भव्य आयोजन था। उसमें राजस्थान के तत्कालीन शिक्षा एव वित्त मन्त्री चन्दनमल जी वैद विशेष रूप से उपस्थित हुए थे। विश्वमैत्री की पृष्ठभूमि पर चिन्तन करते हुए सद्गुरुदेव ने कहा—दर्शन सत्य है, ध्रुव है, त्रैकालिक है। मानव समाज की कुछ समस्याएँ वनती है, और मिटती हैं, किन्तु कुछ समस्याएँ मौलिक होती है। जो मौलिक समस्याएँ है, उन्ही से अन्य समस्याएँ उत्पन्न होती है। दर्शन उन समस्याओ का समाधान प्रस्तुत करता है। विश्व की सवसे बड़ी समस्या विपमता है। उसका मूल कारण है समत्व की दृष्टि का अविकास। भगवान् महावीर ने आज से पच्चीस सौ वर्प पूर्व जो साम्य का स्वर मुखरित किया था वह वर्तमान मे अत्यन्त माननीय है। सूत्रकृताग में भगवान ने कहा कि सभी दार्शनिको से मैं यह प्रश्न करता हूँ कि तुम्हे सुख अप्रिय है या दुःख अप्रिय है। यदि तुम यह कहते हो कि दु ख अप्रिय है तो तुम्हारे ही समान सभी भूतो को, सभी प्राणियो को, सभी जीवो को दु:ख अप्रिय है। जैसे तुम्हे कोई ताडना-तर्जना देता है तो तुम भयभीत होते हो, तुम्हे दुःख होता है, वैसे ही अन्य प्राणियो को भी संक्लेश होता है। अत. तुम्हे उन्हे परिताप नही देना चाहिए।

प्रस्तुत साम्य दर्शन के पीछे विराट और उदात्त भावना रही हुई है, जिससे समाज अधिक समृद्ध वनता है। अहिंसा का मानसिक, वाचिक और कायिक तथा सामाजिक साम्य-साधना का व्यवस्थित रूप दिया है, वह वडा ही अद्भुत है और अनूठा है। वाह्य दृष्टि से भेद होने के वावजूद भी सभी जीवो का आन्तरिक जगत एक सदृश है। जिसने एक आत्म तत्त्व को जान लिया है उसने विश्व के सभी तत्त्वो को जान लिया है। "जे एग जाणइ से सव्व जाणइ"—"एकस्मिन् विज्ञाते सति सर्व विज्ञात भवति" का यही अर्थ है। आज आवश्यकता है समत्व भाव के विकसित करने की। जैन धर्म ने अहिंसा और अनेकान्त दृष्टि से उसी भाव को विकसित करने का

प्रयास किया है। यदि विश्व के चिन्तक इन महनीय सिद्धान्तो को अपना ले. तो विश्व मैत्री होने मे किंचित् मात्र भी विलम्ब नही हो सकता।

इसके पश्चात् गुरुदेवश्री ने उनसे धार्मिक शिक्षा और राजस्थान में बढते हुए मत्स्योद्योग, शराब आदि जो भारतीय सस्कृति के प्रतिकूल है, उन पर नियन्त्रण आवश्यक है; इस बात पर बल दिया। जहाँ तक दुर्गुणो से न बचा जायगा वहाँ तक राष्ट्र समृद्धि के पथ पर नही बढ सकेगा। अन्त में उन्होने गुरुदेवश्री के मौलिक विचारो की मुक्तकण्ठ से प्रशसा करते हुए प्रसन्नता के साथ विदा ली।

दिनाङ्क ३१-१०-८२ को पूज्य गुरुदेवश्री की जन्म जयन्ती के पावन प्रसग पर जोधपुर उपस्थित हुए। आपने कहा—मैं उपाध्यायश्री के तेजस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित हूँ। आपने साहित्य के माध्यम से जो ज्ञान गगा प्रवाहित की, वह युग-युग तक जन-जन के पाप ताप और सताप से सत्रसित जीवो को अपूर्व शान्ति प्रदान करेगी।

गुरुदेव श्री और डी० पी० यादव

गुरुदेवश्री का सन् १९७१ मे बम्बई कान्दावाडी में वर्षावास था। केन्द्रीय मन्त्री श्री डी० पी० यादव उपस्थित हुए। उस समय विहार राज्य विषम दुर्भिक्ष से ग्रस्त था। पीडित बिहारी बन्धुओ के सहायतार्थ वे आये हुए थे। प्रवचन चल रहा था। गुरुदेवश्री ने भारतीय सस्कृति की मूल आत्मा का विश्लेषण करते हुए कहा—भारतीय संस्कृति का मूल आधार है—दया, दान और दमन। प्राणियो के प्रति दया करो, मुक्त भाव से दान करो और अपने मन के विकल्पो का दमन करो। जब मानव को क्रूरता से शान्ति नही मिली तब दया की स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई। जब मानव को सग्रह से शान्ति नही मिली तब दान की निर्मल भावना प्रस्फुटित हुई और जब भोग मे मानव को चैन नही मिला तब इन्द्रिय-दमन आया। विकृत जीवन को सुसस्कृत बनाने के लिए दया, दान और दमन की आवश्यकता है।

गुरुदेवश्री के प्रभावपूर्ण प्रवचन से प्रभावित होकर साठ हजार से अधिक सम्पत्ति विपत्तिग्रस्तो को विपत्ति से मुक्त कराने के लिए प्रवचन मे एकत्रित हो गई।

प्रवचन के पश्चात् भारतीय सस्कृति और सभ्यता पर गुरुदेवश्री से उनकी विचार चर्चा हुई।

गुरुदेव और सरदार गुरुमुख निहालसिह

जुलाई १९५४ में पूज्य गुरुदेवश्री दिल्ली के चाँदनी चौक जैन स्थानक

मे विराज रहे थे। उस समय राजस्थान के भूतपूर्व राज्यपाल सरदार गुरुमुख निहालसिंह दर्शनार्थ प्रवचन सभा मे उपस्थित हुए। गुरुदेवश्री ने अपने प्रवचन मे अहिंसा का विश्लेषण करते हुए कहा—अहिंसा एक तीन अक्षरो का छोटा सा शब्द है किन्तु वह विष्णु के तीन चरण से भी अधिक विराट् व व्यापक है। मानव जाति ही नही अपितु विश्व के सभी चराचर प्राणी इन तीन चरणो मे समाए हुए हैं। जहाँ अहिंसा है, वहाँ जीवन है, जहाँ अहिंसा का अभाव है, वहाँ जीवन का अभाव है। अहिंसा का प्रादुर्भाव कब हुआ यह कहना कठिन है। जैन दर्शन की दृष्टि से प्राणी का अवतरण अनादि है अतः अहिंसा को भी अनादि मानना चाहिए। अहिंसा एक विराट् शक्ति है। मानव आदिकाल से जीवन के विविध पक्षो मे उसके विविध प्रयोग करता रहा है। जिन परिस्थितियों में जिस तरह के समाधान की आवश्यकता हुई, वह समाधान अहिंसा ने दिया है।

यह सत्य है कि विश्व के जितने भी धर्म, दर्शन और सम्प्रदाय हैं उन सभी मे अहिंसा के आदर्श को एक स्वर से स्वीकार किया गया है। सभी धर्म-प्रवर्तको ने अपनी-अपनी दृष्टि से अहिंसा तत्त्व की विवेचना की, तथापि अहिंसा का जैसा सूक्ष्म विश्लेषण और गहन विवेचन जैन साहित्य मे उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नही। जैन संस्कृति की प्रत्येक क्रिया अहिंसामूलक है। विचार मे, उच्चार मे और आचार मे सर्वत्र अहिंसा को सुमधुर झंकार है। महावीर ने कहा—जैसे जीवन का आधार-स्थल पृथ्वी है वैसे ही भूत और भविष्य के ज्ञानियो के जीवन दर्शन का आधार अहिंसा है। महात्मा गांधी ने 'तलवार का असूल' शीर्षक निबन्ध में लिखा था—अहिंसा धर्म केवल ऋषि और महात्माओ के लिए नही, वह तो आम मानव के लिए है। अहिंसा हम मानवो की प्रकृति का कानून है। जिन ऋषियो ने अहिंसा का नियम निकाला वे न्यूटन से ज्यादा प्रभावशाली थे और वेलिगटन मे बडे योद्धा थे।

अहिंसा जीवन का मधुर सगीत है। जब वह सगीत जीवन मे झकृत होता है तो मानव का मन आनन्द-विभोर हो उठता है। अहिंसा दया का अक्षय कोश है। दया के अभाव मे मानव मानव न रहकर दानव बन जाता है। एक विचारक ने कहा है—दया के अभाव में मानव का जीवन प्रेत सदृश है। सुप्रसिद्ध चिन्तक इगरसोल ने लिखा है—जब दया का देवदूत दिल से दुतकार दिया जाता है और आँसुओ का फव्वारा सूख जाता है, तब मानव रेगिस्तान मे रेंगते हुए साँप के समान बन जाता है। वस्तुतः अहिंसा एक

महासरिता के समान है। जब वह साधक के जीवन में इठलाती और बल खाती हुई चलती है तब साधक का जीवन अत्यन्त रमणीय बन जाता है।

अहिंसा केवल निषेधात्मक नही, किन्तु विधेयात्मक है। नही मारना —यह अहिंसा का नकारात्मक पहलू है और मैत्री, करुणा, सेवा, दया आदि उसका विधेयात्मक पहलू है।

प्रवचन मे सद्गुरुदेव ने विविध धर्मों मे जो अहिंसा के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है उस पर भी प्रकाश डाला जिसे श्रवणकर सरदार गुरुमुख निहालसिंह जी अत्यन्त प्रभावित हुए। प्रवचन के पश्चात् अहिंसा विषय पर ही विचार-चर्चाएँ हुईं।

गुरुदेव और भाऊ साहब वर्तक

बम्बई के सन्निकट बिरार (महाराष्ट्र) मे पूज्य गुरुदेवश्री विराज रहे थे। उस समय महाराष्ट्र के कृषि मन्त्री भाऊ साहब वर्तक पूज्य गुरुदेवश्री के निकट सम्पर्क में आये। गुरुदेवश्री ने अपरिग्रह व समाजवाद के सन्दर्भ मे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—परिग्रह आत्मा के लिए सबसे बडा बन्धन है। परिग्रह के जाल में आबद्ध आत्मा विविध हिंसामय प्रवृत्तियाँ करता है। परिग्रह का अर्थ मूर्च्छाभाव है। पदार्थ के प्रति हृदय की आसक्ति व ममत्व की भावना ही परिग्रह है। परिग्रह को सभी धर्मों ने आत्म-पतन का मूल कारण माना है। परिग्रह की कडी आलोचना करते हुए बाइबिल ने कहा—सुई की नोक से ऊँट भले ही निकल जाय पर धनवान कभी स्वर्ग मे प्रवेश नही कर सकता। क्योकि परिग्रह आसक्ति का मूल कारण है। भगवान महावीर ने रूपक की भाषा मे बताया कि परिग्रहरूपी वृक्ष के स्कन्ध—तने है—लोभ, क्लेश, कषाय। चिन्ता रूपी सैकडो सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखाएँ हैं। जैन दर्शन की दृष्टि से भी महाआरम्भी और महापरिग्रही व्यक्ति नरक गति का अधिकारी है। महर्षि व्यास ने कहा—उदर-पालन के लिए जो आवश्यक है, वह व्यक्ति का अपना है, इससे अधिक जो व्यक्ति संग्रह करके रखता है, वह चोर है और दण्ड का पात्र है। आज व्यक्ति, समाज और राष्ट्र मे जो अन्तर्द्वन्द्व चल रहा उसके मूल मे सग्रह वृत्ति है। सग्रह वृत्ति अनर्थों की विषवेल है जो निरन्तर बढती रहती है। दिखाई देने मे बहुत ही सुन्दर और रमणीय फल भी उसमे लगते है, किन्तु उनका परिणाम मारणान्तिक होता है। रूस के महान् क्रान्तिकारी लेनिन ने सग्रह वृत्ति को मानव समाज की पीठ का जहरीला फोड़ा कहा है। उसका आपरेशन होने पर ही काला बाजार और अप्रामाणिकता का खून और विस्तृत होने

वाली शोषण वृत्ति की दुर्गन्ध नष्ट हो सकती है। आज धनिक और गरीब के बीच आर्थिक वैषम्य के कारण एक गहरी खाई परिलक्षित हो रही है। वर्तमान मे फैली हुई विषमता का मार्मिक चित्रण करते हुए कविवर दिनकर ने कहा है—

श्वानो को मिलता दूध वस्त्र,
भूखे वालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी मे चिपक ठिठुर,
जाडे की रात विताते है॥

युवती की लज्जा वसन वेच,
जव व्याज चुकाए जाते है।
मालिक तव तेल फुलेलो पर,
पानी सा द्रव्य वहाते है॥

अत आज आवश्यकता है—'सादा जीवन और ऊँचे विचार' की। सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य का जीवन कितना सीधा सादा और अल्पपरिग्रही था। जव वे आश्रम मे थे तव भी उनके पास कुछ नही था और जब महामन्त्री पद पर आसीन हुए तब भी वही सादगी थी। वृक्ष के नीचे वैठकर ही भारत के शासन सूत्र का सचालन करते थे। वियतनाम के राष्ट्रपति हो-चि-मिन्ह जव राष्ट्रपति चुने गये तव उन्होने कहा—मुझे राष्ट्रपति इसीलिए चुना गया है कि मेरे पास ऐसी कोई चीज नही है, जिसे मैं अपनी कह सकूँ। न मेरा अपना मकान है, न परिवार है, न भविष्य की चिन्ता है। राष्ट्रपति हो-चि-मिन्ह के रहने का मकान भी कच्चा और वाँस का वना हुआ था और अन्य आवश्यक साधन भी अत्यन्त सीमित थे। आज हमारे देश के अधिकृत अधिकारी व्यक्तियो को चाहिए कि उनसे प्रेरणा प्राप्त कर आवश्यकताएँ कम कर एक आदर्श उपस्थित करें।

गुरुदेव और वी० एस० पागे

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य सन् १९७५ मे पूना वर्षावास मे विराज रहे थे। उस समय "जैन दर्शन स्वरूप और विश्लेषण" ग्रन्थ का विमोचन करने हेतु महाराष्ट्र विधान सभा के अध्यक्ष वी० एस० पागे उपस्थित हुए। श्रद्धेय गुरुदेव ने भारतीय दर्शन पर चिन्तन करते हुए कहा—भारतवर्ष दर्शनो की जन्मस्थली है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर भारत के सभी दर्शनो का मुख्य ध्येय आत्मा और उसके स्वरूप का प्रतिपादन है। चेतन और परमचेतन के

स्वरूप को जितनी तल्लीनता के साथ भारतीय दर्शन ने समझने का प्रयास किया है उतना विश्व के किसी अन्य दर्शन ने नही। यह सत्य है कि यूनान के दार्शनिको ने भी आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया है किन्तु उनकी प्रतिपादन शैली अत्यधिक सुन्दर होने पर भी उनमे चेतन और परम चेतन के स्वरूप का विश्लेषण जितना गम्भीर और मौलिक होना चाहिए था उतना नही हो पाया। यूरोप का दर्शन आत्मा का दर्शन न होकर प्रकृति का दर्शन है। भारतीय दर्शन में प्रकृति के स्वरूप पर भी चिन्तन किया गया है किन्तु वह चिन्तन चैतन्य के प्रतिपादन हेतु है। भारतीय दर्शन का अधिक आकर्षण आत्मा की ओर होने पर भी उसने जीवन और जगत की उपेक्षा नही की। भारतीय दर्शन जीवन और अनुभव की एक सुन्दर समीक्षा है। विचार और तर्क के आधार पर दर्शन सत्ता और परमसत्ता के स्वरूप को समझाने का प्रयास करता है और उसके पश्चात् उसकी यथार्थता पर निष्ठा रखने की प्रेरणा प्रदान करता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन मे तर्क और दर्शन का मधुर समन्वय है। पश्चिमी दर्शन स्वतन्त्र चिन्तन पर आधृत है और वह आप्त प्रमाण की पूर्ण उपेक्षा करता है। किन्तु भारतीय दर्शन मे आध्यात्मिक चिन्तन की प्रेरणा है। भारतीय दर्शन में आध्यात्मिक अन्वेषणा है किन्तु बौद्धिक विलास नही। दर्शन का अर्थ है सत्य का साक्षात्कार करना फिर भले ही वह सत्ता चेतन की हो या अचेतन की हो। भारतीय दर्शनो मे जैन दर्शन का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जैन दर्शन अन्य दर्शनो की भाँति तर्क-प्रधान है तथापि उसमे श्रद्धा और मेधा दोनो का समान रूप से विकास किया गया है। जैन परम्परा जहाँ एक ओर धर्म है, वहाँ दूसरी ओर दर्शन है। हम यह अच्छी तरह से जानते है कि दर्शन तर्क और हेतुवाद पर आधारित है, तो धर्म का मुख्य आधार श्रद्धा है। श्रद्धा जिस बात को सर्वथा सत्य मानती है, तर्क उस बात को अस्वीकार करता है। जैन दर्शन मे जितना महत्त्व विश्वास को मिला है उतना ही तर्क को भी मिला है। विश्वास की दृष्टि से देखने पर जैन-परम्परा धर्म है और तर्क की अपेक्षा देखने पर दर्शन है। इस तरह जैन दर्शन के दो विभाग है—व्यवहार पक्ष और विचार पक्ष। व्यवहार पक्ष का आधार अहिंसा है और विचार पक्ष का आधार अनेकान्त है। अहिंसा के आधार पर ही सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रतो का विकास हुआ है। और अनेकान्तवाद के आधार पर नयवाद, स्याद्वाद, और सप्तभगी का विकास हुआ है। जैन परम्परा का अनेकान्तवाद विभिन्न दर्शनो में विभिन्न नामो से मिलता है। बुद्ध ने उसे विभज्यवाद की सज्ञा

प्रदान की है। बादरायण के ब्रह्मसूत्र में अथवा वेदान्त में उसे समन्वय कहा है। मीमांसा, साख्य, वैशेषिक और न्याय दर्शन मे भी भावना रूप से उसकी उपलब्धि होती है। किन्तु अनेकान्तवाद का जितना विकास जैन परम्परा मे हुआ है उतना विकास अन्य दूसरी किसी भी परम्परा मे नही हुआ।

जैन दर्शन मे अहिंसा और अनेकान्तवाद के समान ही कर्मवाद पर भी विस्तार से चिन्तन किया गया है। कर्म, कर्म का फल और करने वाला इन तीनो का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैन दृष्टि से जो कर्म का कर्ता है वही कर्म-फल का भोक्ता भी है। जो जीव जिस प्रकार के कर्म करता है उसके अनुसार शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के फल वह प्राप्त करता है। जिस प्रकार कर्म का निरूपण किया गया है उसी प्रकार कर्म और कर्मबन्धन से मुक्त होने को मोक्ष कहा गया है। जैन दर्शन मे मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण इन शब्दो का प्रयोग हुआ है। मुक्ति आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था है। मोक्ष अवस्था मे आत्मा अपने स्वरूप मे स्थिर रहता है, उसमे अन्य किसी प्रकार का विजातीय तत्व नही होता।

इस प्रकार गुरुदेवश्री के गम्भीर विवेचन को सुनकर पागे जी बहुत ही आकर्षित हुए और उन्होने कहा कि जैन दर्शन वस्तुतः बहुत ही अनूठा दर्शन है। विश्व का अन्य कोई भी दर्शन उनकी समकक्षता नही कर सकता।

गुरुदेव और डॉ० श्रीमाली जी

भारत के भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री कालूराम श्रीमाली मैसूर में सद्गुरुवर्य के साथ विचार-चर्चा करने के लिए दो-तीन बार उपस्थित हुए। गुरुदेवश्री तथा उनके शिष्यो द्वारा विरचित साहित्य को देखकर वे अत्यन्त प्रमुदित हुए। उन्होने कहा—मुझे परम प्रसन्नता है शोध प्रधान जो तुलनात्मक दृष्टि से साहित्य निर्माण हो रहा है, उसकी आज अत्यधिक आवश्यकता है। "जैन कथाएँ" देखकर उन्होने आश्चर्य प्रकट किया कि जैन साहित्य मे कथासाहित्य का इतना भण्डार है। इसे हिन्दी साहित्य मे लाने का आ[illegible] जो प्रयास किया है वह प्रशसनीय है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने कथाओ माध्यम से जीवन के अद्भुत तत्त्व जिस सरलता और सुगमता से प्रस् किये हैं, उसे जन-मानस सहज रूप से ग्रहण कर लेता है।

ध्यान और योग तथा जप साधना की चर्चा चलने पर गुरुदेव ने क —ध्यानशतक मे आचार्य जिनभद्र ने स्थिर चेतना को ध्यान कहा है अ चल चेतना को चित्त कहा है।

"जं थिरमज्झवसाण त झाण जं चलं तं चित्त"

—ध्यान-शतक २१

आचार्य अकलक ने ध्यान की परिभाषा करते हुए लिखा है—जैसे बिना हवा वाले प्रदेश मे प्रज्वलित प्रदीप-शिखा प्रकम्पित नही होती; वैसे ही निराकुल प्रदेश मे अपने विशिष्ट वीर्य से सिद्ध अन्तःकरण की वृत्ति एक आलम्बन पर अवस्थित हो जाती है। उनके अभिमतानुसार व्यग्र चेतना ज्ञान है और वही स्थिर होने पर ध्यान है।

आचार्य रामसेन ने कहा—एक आलम्बन पर अन्तःकरण की वृत्ति का निरोध ध्यान है। इसी तरह चिन्तनरहित स्वसवेदन ही ध्यान है।

जैनाचार्यों ने ध्यान को अभावात्मक नही माना है। उसके लिए किसी न किसी एक पर्याय का आलम्बन आवश्यक माना है। स्व-सवेदन ध्यान निरालम्बन ध्यान है। उसमे किसी श्रु त के पर्याय का आलम्बन नही होता। इस ध्यान मे ध्यान और ध्येय भिन्न नही होते। इसमे शुद्ध चेतना का उपयोग होता है। अन्य किसी ध्येय का ध्यान नही होता। दूसरा ध्यान सालम्बन ध्यान है। प्रारम्भ मे साधक को सालम्बन ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। उसके द्वारा एकाग्रता पुष्ट होती है। राग-द्वेष के भाव मन्द होते है। उसके पश्चात् निरालम्बन ध्यान अधिक उपयुक्त है।

ध्यान चित्त की निर्विकल्प दशा है। वहाँ पर किसी भी दशा मे मन का लगाव नही रहता एतदर्थ ही आचार्यों ने कहा—"ध्यानं निर्विषयं मनः"—निर्विषय मन ही ध्यान है। प्रस्तुत ध्यानावस्था अन्तर् की गहन जागृति की झकार है जो प्रतिपल-प्रतिक्षण ध्याता को सुनाई देती है। ध्यान से चित्त मे जो अनन्त-अनन्त ऊर्जाएँ प्रसुप्त हैं वे जागृत होकर बहिर्मुखी प्रवाह को अवरुद्ध कर देती है। अतः जैन साधना-पद्धति मे ज्ञान और ध्यान पर अत्यधिक बल दिया गया है।

ध्यान शब्दों का विषय नही है। वह शब्दातीत अनुभूति है। इस अरूप अनुभूति को साधको ने विभिन्न प्रतीको के द्वारा व्यक्त किया है। जैसे—ध्यान एक अलौकिक मस्ती का नाम है जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् पर का बोध नही रहता। दूसरे शब्दो मे स्वय मे खो जाने का नाम ध्यान है।

ध्यान-साधना के लिए आहार पर नियन्त्रण, शरीर पर नियन्त्रण, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, श्वासोच्छ्वास पर नियन्त्रण, भाषा पर नियन्त्रण और मन पर नियन्त्रण आवश्यक है। सालम्बन ध्यान के पिण्डस्थ अर्थात् शरीर

के किसी एक अवयव पर एकाग्र होना, उसकी पाँच धारणाएँ है—(१) पार्थिवी, (२) आग्नेयी (३) वायवी (४) वारुणी और (५) तत्त्वरूपवती। धारणा का अर्थ बाँधना है। ध्येय मे चित्त को स्थिर करना धारणा है। इन धारणाओ के सम्बन्ध मे गुरुदेवश्री ने विस्तार से विवेचन किया।

सालम्बन ध्यान का दूसरा प्रकार पदस्थध्यान है—किन्ही पवित्र पदो का आलम्बन लेकर उनके आधार पर चित्त को स्थिर करना पदस्थ ध्यान है। नवकार महामन्त्र, गायत्री मन्त्र, भगवद्नाम आदि का जप इसी ध्यान के अन्तर्गत आता है।

तीसरे ध्यान का प्रकार रूपस्थ ध्यान है। यह है—किसी पदार्थ विशेष के रूप और आकार पर ध्यान स्थिर रखना।

चतुर्थ प्रकार का ध्यान रूपातीत है। इस ध्यान मे निर्विकार, निरजन, सिद्ध परमात्मा का ध्यान करते हुए आत्मा स्वय को मलमुक्त सिद्ध स्वरूप में ही अनुभव करता है।

इस प्रकार ध्यान के सम्बन्ध मे गहराई से उनसे विचार-चर्चाएँ हुई जिसे श्रवणकर वे अत्यन्त आल्हादित हुए।

गुरुदेव और श्रममन्त्री सी० एन० पाटिल

दिनांक ७-१०-१९७६ को रायचूर मे कर्नाटक के श्रम मन्त्री सी० एन० पाटिल उपस्थित हुए। उनके साथ औपचारिक वार्तालाप करते हुए गुरुदेव श्री ने कहा कि कर्नाटक जैन सस्कृति का अतीत काल से ही केन्द्र रहा है। इतिहास की दृष्टि से भद्रबाहु स्वामी उत्तर भारत से इधर आये थे, ऐसा माना जाता है। जैन श्रमण भाषा की दृष्टि से बहुत ही उदार रहे। उन्होने जिस तरह से अन्य भाषाओ मे साहित्य का सृजन किया उसी तरह कन्नड भाषा मे भी साहित्य निर्माण कर उसे समृद्ध बनाया। यहाँ तक कि कन्नड साहित्य मे से जैन साहित्य को निकाल दिया जाय तो प्राचीन कन्नड साहित्य प्राणरहित हो जायगा। नृपतु ग, आदि पप, पोन्न, रन्न, चामुण्डराय, नागचन्द्र, कुमुदेन्दु, रत्नाकरवर्णी आदि शताधिक जैन लेखक हुए हैं जिन्होने साहित्य की प्रत्येक विधा मे जमकर लिखा है। अभी बहुत सा साहित्य अप्रकाशित पडा है। शासन का कर्तव्य है कि ऐसे साहित्य को प्रकाश मे लाकर जैन धर्म और सस्कृति के सुनहरे इतिहास को जन-जन के समक्ष प्रस्तुत किया जाय।

श्री सी० एन० पाटिल ने कहा—आपश्री ने मेरा ध्यान इस ओर

आकर्षित किया तदर्थ मैं आभारी हूँ और ऐसा प्रयास करूँगा जिससे जैन कन्नड साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार और प्रसार हो सके।

श्रद्धेय गुरुदेव और बाबू जगजीवन राम

दिनाक ६-२-१९७८ को केन्द्रीय रक्षा मन्त्री श्री जगजीवन रामजी कर्नाटक चुनाव प्रचार हेतु के० जी० एफ० राबर्टसनपेठ में उपस्थित हुए। वे श्रद्धेय सद्गुरुवर्य का आशीर्वचन प्राप्त करने हेतु जैन स्थानक में दर्शनार्थ उपस्थित हुए। अभिवादन के पश्चात् श्रद्धेय सद्गुरुवर्य ने बताया—भगवान् ऋषभदेव विश्वसंस्कृति के आद्यपुरुष है। जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परा मे ही नही किन्तु विश्वसंस्कृति मे उसका अप्रतिम स्थान है, वे सस्कृतियो के सगमस्थल है। उनके सम्बन्ध मे विशद जानकारी देने के हेतु "ऋषभदेव एक परिशीलन" ग्रन्थ उन्हे प्रदान करते हुए कहा कि ये राजनीति के आद्यपुरुष है। इनसे प्रेरणा प्राप्त कर जनता-जनार्दन के कल्याण हेतु धर्म के पथ पर शासन अग्रसर हो—यही मेरी मंगल मनीषा है।

श्री जगजीवन राम को श्री राजेन्द्र मुनि रचित ग्रन्थ की भेट मे दिये गये।

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य और श्री पी० रामचन्द्रन

दिनाक १६-२-१९६८ को केन्द्रीय विद्युत एवं ऊर्जा मन्त्री श्री पी० रामचन्द्रन गुरुदेवश्री के दर्शनार्थ एवं विचार-चर्चा हेतु के० जी० एफ० जैन स्थानक में उपस्थित हुए। वार्तालाप के प्रसंग में श्रद्धेय सद्गुरुवर्य ने धर्म और सम्प्रदाय का विश्लेषण करते हुए कहा—धर्म जीवन का सगीत है। आध्यात्मिक उत्क्रान्ति का मूलमन्त्र है। धर्म है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अनासक्ति। ये सद्गुण प्रत्येक मानव के जीवन को विकसित करते हैं। धर्म को जहाँ सम्प्रदाय का रूप दे दिया जाता हैं, वहाँ संघर्ष, कलह आदि समुत्पन्न होते है। सम्प्रदाय में धर्म निश्चित रूप से रहा हुआ हो, यह नही कहा जा सकता। सम्प्रदाय जन्म लेता है और मरता है, किन्तु धर्म सदा अखण्ड रहता है। सम्प्रदाय पाल के समान है और धर्म पानी के समान है। तालाब की पाल हो परन्तु पानी न हो तो वह तालाव किस काम का ?

हमारे संविधान मे भारत को 'धर्म-निरपेक्ष' राज्य कहा गया है। मेरी दृष्टि से यह ठीक नही है। इसके बदले "सम्प्रदाय-निरपेक्ष" राज्य कहा जाता तो अधिक उचित होता।

श्री रामचन्द्रनजी ने स्वयं अनुभव किया कि उपाध्यायश्री का कथन यथार्थ है।

स्थानीय जैन युवक मण्डल ने श्री रामचन्द्रन को नमस्कार महामन्त्र का कलात्मक चित्र समर्पित किया। श्रद्धेय गुरुदेवश्री ने नमस्कार महामन्त्र का अर्थ बताते हुए कहा—यह जैनधर्म का महामन्त्र है। इसमे व्यक्ति की पूजा नही किन्तु गुणो की उपासना की गयी है। जैनधर्म व्यक्ति-पूजा को नही, गुण-पूजा को महत्त्व देता है। चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो या शिव हो या जिन हो वह सभी को जिनका राग-द्वेष नष्ट हो गया हो उनको नमस्कार करता है।

जैनधर्म की इस उदार वृत्ति को देखकर केन्द्रीय मन्त्री का हृदय गद्‌गद् हो गया। गुरुदेवश्री ने कहा—मैं आपकी जन्मस्थली तमिलनाडु मे आ रहा हूँ। यह जानकर श्री रामचन्द्रन को हार्दिक आल्हाद हुआ और उन्होने गुरुदेवश्री से साग्रह प्रार्थना की—आप उस पुण्यभूमि मे अवश्य पधारें। समय निकालकर मैं फिर कभी आपके दर्शन का लाभ लूँगा।

अन्त मे श्री रामचन्द्रनजी को "ऋषभदेव : एक परिशीलन" तथा श्री राजेन्द्रमुनि द्वारा लिखित ग्रन्थ समर्पित किये गये।

गुरुदेव और श्री गोलवलकर

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सरसंघ संचालक स्व० श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (गुरुजी) का, गुरुदेवश्री सन् १९७२ मे जब सिंहपोल जोधपुर मे चातुर्मास हेतु विराज रहे थे, तब उनका दर्शनार्थ आगमन हुआ। भारतीय धर्म, दर्शन और सस्कृति के सम्बन्ध मे गम्भीर विचार-चर्चा करते हुए गुरुदेवश्री ने कहा—ये तीनो मानव विकास के लिए आवश्यक है। इन तीनो को विभक्त नही किया जा सकता। तीनो का समन्वित रूप ही मानव जीवन के लिए वरदानस्वरूप है। जव संस्कृति आचारोन्मुख होती है तव वह धर्म है और जब वह विचारोन्मुख होती है तव वह दर्शन है। सस्कृति का वाह्यरूप क्रियाकाण्ड है, वह धर्म है और संस्कृति का आन्तरिक रूप चिन्तन है वह दर्शन है। सस्कृति का अर्थ सस्कार है। सस्कार चेतन का हो सकता है, जड का नही।

सस्कृति अपने आप मे एक अखण्ड और अविभाज्य तत्त्व है। उसका खण्ड या विभाजन नही किया जा सकता है। भेद या खण्ड चित्त की सकीर्णता के प्रतीक हैं। सस्कृति के पूर्व जव किसी प्रकार का कोई विशेषण लगा दिया जाता है तो वह विभाजित हो जाती है। अखण्ड होकर भी वह विशेषणो के कारण विभक्त हो जाती है। यही कारण है कि भारतीय सस्कृति भी

श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति इन दो विभागो में विभक्त हो गयी है। श्रमण और ब्राह्मण ये दोनों भारतीय धर्मपरम्पराएँ गुरु के गौरवपूर्ण पद को अलकृत करती रही है। एक ही राष्ट्र मे रहते हुए, एक ही राष्ट्र के अन्न-जल का उपभोग करते हुए दोनों की चिन्तन पद्धति पृथक्-पृथक् रही है। श्रमणो ने त्याग, वैराग्य और विरक्ति को प्रधानता दी तो ब्राह्मणो ने भोग, सुख और सुविधा को। श्रमणो ने भौतिक सुखो से विरक्त होकर आध्यात्मिक कल्याण को प्राप्त करने का लक्ष्य बनाया तो ब्राह्मणों ने ससार मे रहकर अधिक से अधिक सुखो के उपभोग करने का। ब्राह्मण सस्कृति का अन्तिम लक्ष्य स्वर्ग है जहाँ सुखो का सागर ठाठें मार रहा है, जबकि श्रमण संस्कृति का लक्ष्य मोक्ष है जहाँ भौतिक सुख का पूर्ण अभाव है। वस्तुतः ब्राह्मण सस्कृति समाज और राष्ट्रोन्नति को प्रधानता देती है और श्रमण संस्कृति व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास, चेतना के अन्तर्शोधन एवं चेतना के ऊर्ध्वमुखी विकास को महत्त्व देती है।

ब्राह्मण सस्कृति को विकसित करने में मीमासा-दर्शन, वेदान्त दर्शन, वैशेषिक दर्शन और न्याय दर्शन का अपूर्व योगदान रहा है, तो श्रमण सस्कृति को विकसित करने में जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, साख्यदर्शन, योगदर्शन और आजीवक दर्शन का हाथ रहा है। ब्राह्मण सस्कृति का मूल लक्ष्य कर्मयोग है तो श्रमण सस्कृति का ज्ञानयोग और संन्यासयोग है। श्रमण सस्कृति मे श्रमण-जीवन को मुख्य माना है, गृहस्थ-जीवन को अपेक्षा श्रमण-जीवन की श्रेष्ठता और ज्येष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। कपिल ने और पतञ्जलि ने क्रमशः सांख्यशास्त्र और योगसूत्र में संन्यास को जीवन का मुख्य धर्म स्वीकार किया है। यद्यपि उच्चतम साधको के लिए श्रमण शब्द का व्यवहार न किया गया हो तथापि यह सत्य है कि संन्यासी, परिव्राजक और योगी शब्द का भी वही अर्थ है जो श्रमण शब्द का है। सांख्यदर्शन का सन्यासी, योग दर्शन का योगी और श्रमण संस्कृति का श्रमण तीनो का मूल उद्देश्य एक ही है—आध्यात्मिक जीवन का विकास कर अनन्त आनन्द को प्राप्त करना। इस दृष्टि से साख्यदर्शन और योगदर्शन भी श्रमण दर्शन से अभिन्न हैं। आजीवक पथ भी श्रमण परम्परा का ही अग था, भले ही उसकी परम्पराएँ आज लुप्त हो गयी हैं। श्रमण सस्कृति की सीमा अत्यन्त विस्तृत और व्यापक रही है।

गोलवलकरजी ने कहा—जैन धर्मावलम्बी हिन्दू समाज के ही अग हैं फिर वे अपने आपको जैन क्यो लिखते है ?

गुरुदेव श्री ने समाधान करते हुए कहा—'भारत मे रहने वाले सभी

हिन्दू है' इस परिभाषा की दृष्टि से जैन भी हिन्दू है। और 'जिसका हिंसा से दिल दुखता है वह हिन्दू है,' इस परिभाषा से भी जैन हिन्दू है। किन्तु 'जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन त्रिदेवो को मानता हो, चारो वेदो को प्रमाणभूत मानता हो, ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानता हो, वही हिन्दू है,' इस परिभाषा की दृष्टि से जैन हिन्दू नही है। क्योकि वह ईश्वर को सृष्टिकर्ता नही मानता और न वेद आदि को ही अपने आधारभूत धर्मग्रन्थ मानता है और न त्रिदेवो मे उसका विश्वास है। इसीलिए हिन्दू धर्म अलग है और जैन धर्म अलग है। यह सत्य है कि जैन सस्कृति हिन्दू सस्कृति से पृथक होते हुए भी भारतीय सस्कृति का ही एक अंग है। भारतीय सस्कृति से वह पृथक नही है।

गुरुजी ने गुरुदेवश्री के द्वारा किये गये विश्लेषण को सुनकर प्रसन्न मुद्रा मे कहा—आप जैसे समन्वयवादी और सुलझे हुए विचारक सन्तो की अत्यधिक आवश्यकता है।

गुरुदेव और जगद्गुरु शकराचार्य

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य और कांची कामकोटि पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य की भेंट का मधुर प्रसग बडा दिलचस्प है। सन् १९३९ मे गुरुदेव का चातुर्मास नासिक मे था। सन्ध्या के समय आपश्री गोदावरी नदी की ओर बहिर्भूमि के लिए जा रहे थे। सामने से कार मे जगद्गुरु आ रहे थे। उन्होने आपको देखते ही कार रोक दी और सस्कृत भाषा मे आपसे पूछा—आप कौन है ?

गुरुदेवश्री ने कहा—मैं वर्ण दृष्टि से ब्राह्मण और धर्म की दृष्टि से जैन श्रमण हूँ।

जगद्गुरु इस उत्तर को सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होने कहा—ब्राह्मण और जैनो मे तो आदिकाल से ही वैर रहा है, साँप और नकुल की तरह। फिर आपने ब्राह्मण कुल मे जन्म लेकर श्रमण धर्म कैसे स्वीकार किया ?

आपश्री ने कहा—जैन और ब्राह्मणो मे परस्पर कटुतापूर्ण व्यवहार भी रहा है, यह सत्य है और यह भी सत्य है कि हजारो ब्राह्मण जैन धर्म में प्रव्रजित हुए। भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य जो गणधर कहलाते है वे ग्यारह ही वर्ण से ब्राह्मण थे उनके चार हजार चार सौ शिष्य भी ब्राह्मण थे। उन सभी ने भगवान महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया था। भगवान महावीर के शिष्य परिवार मे ब्राह्मणो की सख्या काफी थी और उन सभी ने

जैन धर्म के गौरव को बढाने मे अपूर्व योगदान किया। भगवान महावीर के पश्चात् भी सैकडो ब्राह्मण मूर्धन्य मनीषियो ने जैन धर्म मे दीक्षा ग्रहण की और विराट् साहित्य का सृजन कर जैन धर्म की विजय वैजयन्ती फहराई है। आचार्य हरिभद्र, सिद्धसेन दिवाकर आदि शताधिक विद्वान् हुए है, जो वर्ण से ब्राह्मण थे।

जैन धर्म को आपने क्यो स्वीकार किया ? इस प्रश्न के उत्तर मे आप-श्री ने कहा—जैन धर्म मे त्याग, संयम और वैराग्य की प्रधानता है। जैन श्रमण अपने पास एक पैसा भी नही रख सकता है। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। भारत के विविध अचलो मे वह पैदल व नगे पाँव परिभ्रमण करता है। वह अपना सामान स्वय उठाता है। मधुकरी कर अपने जीवन का निर्वाह करता है और अपने सिर तथा दाढी के बालो को भी वह हाथो से नोचकर निकालता है जिसे जैन परिभाषा में लुञ्चन कहते है। जैन श्रमणो की इस त्याग-निष्ठा ने ही मुझे जैन धर्म में प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए उत्प्रेरित किया।

उसके पश्चात् जैन दर्शन की विशेषताओ पर और भारतीय दर्शन मे जैन दर्शन का क्या स्थान है ? इस सम्बन्ध में आपने विस्तार के साथ विवेचन किया। आपश्री के विवेचन को सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होने कहा—आज प्रथम बार ही मुझे जैन मुनि से मिलने का अवसर मिला है। जैन दर्शन के सम्बन्ध मे मैंने बहुत कुछ पढा है; किन्तु आप से मिलकर अनेक भ्रान्त धारणाओ का निरसन हो गया। आपश्री का यह वार्तालाप दो सस्कृ-तियो के समन्वय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा। वस्तुत. मिलन और सम्मिलन से पूर्वाग्रह से उत्पन्न भ्रान्त धारणाओ का निरसन हो जाता है और एक-दूसरे को समझने का प्रयास सफल होता है।

गुरुदेव और जैनेन्द्र कुमार

सन् १९६७ का गुरुदेवश्री का वर्षावास बालकेश्वर बम्बई मे था। उस समय मूर्धन्य साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार जी गुरुदेवश्री के दर्शनार्थ उप-स्थित हुए। वार्तालाप के प्रसग में जैन मनोविज्ञान पर चिन्तन करते हुए सद्गुरुदेव ने कहा—जैन मनोविज्ञान आत्मा, कर्म, और नोकर्म की त्रिपुटी पर आधारित है। जैन दृष्टि से मन एक स्वतन्त्र पदार्थ या गुण नही अपितु आत्मा का ही एक विशेष गुण है। मन की प्रवृत्ति सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नही अपितु कर्म और नोकर्म की स्थिति की अपेक्षा से है। जब तक हम इसका स्वरूप नही समझेंगे वहाँ तक मन का स्वरूप नही समझा जा सकता।

आत्मा चैतन्य लक्षण वाला है। वह सख्या की दृष्टि से अनन्त है। उन सभी आत्माओ की सत्ता स्वतन्त्र है। ससार मे जितनी भी आत्माएँ है, वे अन्य आत्मा वा परमात्मा का अंश नही। इस विराट् विश्व में जितनी भी आत्माएँ है, उनमे चेतना अनन्त है। वे अनन्त प्रमेयो को जानने मे समर्थ है। चैतन्य स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्माएँ समान है, पर चेतना का विकास सभी आत्माओं में समान नही होता। उस चैतन्य विकास का जो तारतम्य है उसका मूल निमित्त कर्म है।

कर्म पुद्गल है, जो आत्मा की प्रवृत्ति द्वारा आकृष्ट होकर उसके साथ एकमेक हो जाते है। कर्म आत्मा के निमित्त से होने वाला एक प्रकार का पुद्गल परिणाम है। जैसे—आहार, औषधि, जहर, मदिरा प्रभृति पौद्गलिक पदार्थ परिपाक दशा मे प्राणियो को प्रभावित करते हैं। आहार आदि का परमाणु-प्रचय स्थूल होने से उसमे सामर्थ्य कम होता है। किन्तु कर्म का परमाणु-प्रचय सूक्ष्म होने से उसमें सामर्थ्य की अधिकता होती है। आहारादि ग्रहण करने की प्रवृत्ति स्थूल है। अतः उसका स्पष्ट परिज्ञान होता है किन्तु कर्म ग्रहण करने की प्रवृत्ति सूक्ष्म होने से उसका स्पष्ट परिज्ञान नही होता। जैसे आहारादि के परिणामो को जानने के लिए शरीरशास्त्र है; वैसे ही कर्म के परिणामो को जानने के लिए कर्मशास्त्र है। जैसे आहारादि का प्रत्यक्ष प्रभाव शरीर पर पडता है और परोक्ष प्रभाव आत्मा पर, उसी तरह कर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव आत्मा पर और परोक्ष प्रभाव शरीर पर होता है। पथ्य आहारादि से शरीर का उपचय होता है, अपथ्य आहारादि से अपचय होता है और दोनो प्रकार का आहार न मिलने पर मृत्यु होती है। वैसे ही पुण्य से आत्मा को सुख और पाप से दुःख और दोनो के नष्ट हो जाने पर मुक्ति मिलती है।

कर्म-विपाक की जो सहायक सामग्री है, वह नोकर्म है। यदि हम कर्म को आन्तरिक परिस्थिति कहे तो नोकर्म को बाह्य परिस्थिति कह सकते हैं। कर्म प्राणियो को फल देने मे समर्थ है, पर उसकी समर्थता के साथ द्रव्य, काल, क्षेत्र, भाव, अवस्था, भवजन्म, पुद्गल-परिणाम प्रभृति बाह्य परिस्थितियो की भी अपेक्षा है।

आत्मा सूर्य के समान प्रकाशित है। किन्तु उसके दो रूप है—एक आवृत है और दूसरा अनावृत है। आवृत चेतना के अनेक भेद-प्रभेद हैं। किन्तु अनावृत चेतना का एक ही प्रकार है।

शरीर और चेतना दोनो पृथक् है, किन्तु इनका अनादिकाल से सम्बन्ध है। चेतन से शरीर का निर्माण हुआ है। शरीर उसका अधिष्ठान

है। अतः एक दूसरे पर पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। शरीर का निर्माण चेतन विकास के आधार पर आधृत है। इन्द्रियाँ और मन जिस जीव के जितने विकसित होते हैं, उतने ही ज्ञानतन्तु बनते है। वे ज्ञानतन्तु ही इन्द्रिय और मानस ज्ञान के साधन है। जहाँ तक वे ज्ञान तन्तु स्वस्थ रहते है, तब तक इन्द्रियाँ स्वस्थ रहती है। यदि ज्ञान तन्तुओ को शरीर से पृथक् कर दिया जाय तो इन्द्रियो में जानने की शक्ति नही रह सकती।

जैन दृष्टि से मन दो तरह का है—एक चेतन और दूसरा पौद्गलिक। पौद्गलिक मन, चेतन मन का सहयोगी है। उसके बिना चेतन मन कार्य करने मे अक्षम है। चेतन मन को ही ज्ञानात्मक मन भी कहा गया है। चेतन मन पौद्गलिक परमाणुओं से नही बनता और न उनका रस ही है। चेतना आत्मा का गुण है। आत्माशून्य शरीर में चेतना नही होती और शरीर-शून्य आत्मा की चेतना हम देख नही सकते। हमे शरीरयुक्त आत्मा की चेतना का ही परिज्ञान होता है।

यह एक सत्य तथ्य है कि वस्तु का अपना गुण किसी भी समय वस्तु से अलग नही होता। दो वस्तुओ के संयोग होने पर तीसरी नूतन वस्तु का निर्माण होता है। किन्तु उसमे जो गुण हैं वह दोनो के सम्मिश्रण से ही बना है, वह कही बाहर से नही आया। यदि उनका विघटन हो जाये तो वस्तुओ के निजगुण स्वतन्त्र हो जाते है। उदाहरण के रूप मे, जैसे गन्धक के तेजाब में हाइड्रोजन, गन्धक और ऑक्सीजन का सम्मिश्रण रहता है। उनके अपने विशेष गुण होते हैं। उनको निर्माण करने वाली मूल धातुएँ यदि अलग-अलग कर दी जायें तो वे अपने मूल गुणो के साथ ही पायी जाती है।

आत्मा मे चैतन्यगुण है और जड मे अचैतन्य। इन दोनो के सयोग से जो तीसरा गुण पैदा होता है वह है वैभाविक गुण। उस वैभाविक गुण के आहार, श्वासोच्छ्वास, भाषा और पौद्गलिक मन, ये चार रूप है। ये चारो गुण आत्मा और शरीर के सम्मिश्रण से समुत्पन्न होते है, तथा आत्मा और शरीर का विघटन होने पर नष्ट हो जाते है।

आत्मा अरूपी है। उसे हम देख नही सकते। किन्तु शरीर की क्रियाओ से उस आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। आत्मा विद्युत के समान है, तो शरीर बल्ब के समान है। ज्ञानशक्ति आत्मा का गुण है और उसके साधन शरीर के अवयव है, जैसे बोलने का प्रयास आत्मा करता है और उसकी अभिव्यक्ति का साधन शरीर है। आत्मा के अभाव में चिंतन, बोलना,

बुद्धिपूर्वक गमन-आगमन आदि करना नही होता। शरीर के अभाव मे आत्मा की अभिव्यक्ति भी नही हो सकती। जब हमारा मन चिन्तन के लिए प्रवृत्त होता है तो उसे पौद्गलिक मन के द्वारा पुद्गलो को ग्रहण करना पडता है। यदि वह ग्रहण न करे तो प्रवृत्ति नही कर सकता है।

जब हम चिन्तन करते है उस समय इष्ट और अनिष्ट भाव आते है। उन इष्ट और अनिष्ट पुद्गलो को द्रव्य मन ग्रहण करता है। अनिष्ट पुद्गल जो मन के रूप मे परिणत हुए हैं उनसे शरीर को हानि होती है और इष्ट पुद्गल जो मन के रूप मे परिणत हुए है, उनसे शरीर को लाभ होता है। इस तरह मन का असर शरीर पर होता है। इसे ही हम 'शरीर पर मानसिक असर' कहते है। देखने की शक्ति ज्ञान है, ज्ञान आत्मा का निज-गुण है। आँख के बिना मानव देख नही सकता। यदि आँख मे मोतिया आ गया है, तो देखने की क्रिया नही हो पाती है। चिकित्सा के द्वारा मोतिया को निकाल देने पर वह पुनः देखने लगता है। यही स्थिति मस्तिष्क और मन के सम्बन्ध मे भी है।

वार्तालाप के प्रसग मे ही इन्द्रिय तथा मन के सम्बन्ध मे तथा मन क्या है ? विभिन्न दर्शनो मे मन की स्थिति क्या रही है ? मन की व्यापकता, मानसिक योग्यता के तत्त्व, लेश्या, ध्यान आदि के सम्बन्ध मे विस्तार से वार्तालाप हुआ। गुरुदेवश्री के गभीर विचारो को सुनकर जैनेन्द्र कुमारजी अत्यन्त आल्हादित हुए और उन्होने कहा—मैं जैन मनोविज्ञान के सम्बन्ध मे अध्ययन करूँगा। आज जैन मनोविज्ञान को नूतन परिवेश मे प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। आधुनिक युवक जैन मनोविज्ञान के सम्बन्ध मे सर्वथा अपरिचित है। इस पर कार्य किया जाय तो बहुत लाभ हो सकता है।

गुरुदेव और प० सुखलालजी संघवी

प० सुखलाल जी भारतीय दर्शन के एक महान चिन्तक और मर्मज्ञ विद्वान् थे। पण्डितजी ने जैन दर्शन पर शोध दृष्टि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की है। वे गुरुदेवश्री से सन् १९५६ मे जयपुर मे तथा सन् १९७२ मे एव १९७४ मे अहमदावाद के अनेकान्त विहार मे मिले। गुरुदेवश्री ने पण्डित जी के समक्ष दर्शन सम्वन्धी अपनी अनेक जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की। पण्डितजी ने अत्यन्त सरल व सहज रूप से उन जिज्ञासाओ का समाधान किया। पण्डितजी गुरुदेवश्री की जिज्ञासा वृत्ति को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होने कहा—जिज्ञासा ही दर्शन की जननी है। जव तक जिज्ञासा नही होती, तव तक सत्य के द्वार उद्घाटित नही होते। जैन मुनियो मे प्रथम

बार ही आप में इतनी जिज्ञासा देखी है और यही आपके विकास का मूल कारण है। जैन श्रमण पण्डितो से बात करने में अपना अपमान समझते हैं; पर आप में मैंने विलक्षणता देखी, जो आप विचार-चर्चा के लिए यहाँ पर पधारे हैं और मेरी कई कडवी बातें भी आपने ध्यान से सुनी है, पर मेरे अन्त-र्मानस में हित की ही भावना है कि जैन श्रमण ज्ञान की दृष्टि से आगे बढ़ें। ज्ञान-चर्चा की दृष्टि से पण्डितजी की यह भेंट पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रही।

गुरुदेव और पं० बेचरदास जी दोशी

पं० बेचरदास जी दोशी प्राकृत भाषा के मूर्धन्य मनीषी थे। उनका अध्ययन विशाल और दृष्टि व्यापक थी। वे पूज्य गुरुदेवश्री से अनेको बार मिले। जब भी मिले तब प्राकृत भाषा और आगम साहित्य के रहस्य को लेकर विचार-चर्चाएँ करते रहे है। उन विचार-चर्चाओ मे वे गुरुदेवश्री से आगम के गहन रहस्यो को जानकर कई बार अत्यन्त आल्हादित हुए और उनके हृत्तन्त्री के तार झनझना उठे कि गुरुगम से जो ज्ञान प्राप्त होता हैं, वही सही ज्ञान है। कई बार पढने से उन्ही रहस्यो का परिज्ञान नही होता।

गुरुदेव और पं० दलसुखभाई मालवणिया

पं० दलसुखभाई जैन दर्शन के मूर्धन्य चिन्तको में से है। वे बहुत ही सुलझे हुए विचारक हैं। गुरुदेवश्री के जयपुर, अहमदाबाद, बम्बई, पूना, बेंगलोर और बडोदा मे दर्शन किये और अनेको बार गुरुदेवश्री से धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति के विभिन्न विषयो पर विचार-चर्चाएँ हुई। गुरुदेवश्री के स्नेह-सौजन्य-युक्त स्वभाव से वे बहुत ही प्रभावित हुए। विस्तार-भय से हम उन चर्चाओ का अंकन यहाँ नही कर रहे हैं।

गुरुदेव और आगमप्रभावक मुनि श्री पुण्यविजय जी म०

सादडी सन्त सम्मेलन के सुनहरे अवसर पर आगम प्रभावक मुनिश्री पुण्यविजय जी से गुरदेवश्री की भेंट हुई। सम्मेलन के अति व्यस्त कार्यक्रम के कारण उस समय विशेष विचार-चर्चा नही हो सकी। किन्तु सन् १९७० में बम्बई बालकेश्वर में अनेको बार आपश्री को आगम, नियुक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकाएँ आदि के रहस्यो को लेकर विचार-चर्चाएँ हुई। वे चर्चाएँ अत्यन्त ज्ञानवर्धक थी। गुरुदेवश्री ने अनेक बातें जो स्थानकवासी परम्परा में धारणा—व्यवहार के रूप मे चल रही थी वे आपश्री को बतायी। उसे सुनकर आपश्री ने कहा—जो बातें धारणाओ से

चल रही हैं, वे वडी महत्त्वपूर्ण हैं। आगमो के अनेक रहस्य जो आगम और व्याख्या साहित्य से भी स्पष्ट नही होते, वे इनसे स्पष्ट हो जाते है। आगम-प्रभावक जी ने यह भी बताया कि स्थानकवासी परम्परा की धारणाओ का एक सकलन हो जाय तो आगमो के रहस्य को समझने मे उनका भी अत्यधिक उपयोग हो सकता है।

गुरुदेव और आचार्य श्री तुलसी

गुरुदेवश्री का आचार्य तुलसीजी से दो वार मिलन हुआ। प्रथम वार सन् १९६१ मे सरदारगढ (राजस्थान) मे और द्वितीय बार सन् १९६५ मे जोधपुर मे। प्रथम बार मिलने के समय आचार्यश्री तुलसीजी ने तेरापन्थी समुदाय के द्वारा प्रकाशित अपना सम्पूर्ण साहित्य गुरुदेवश्री को भेंट किया। दूसरे दिन प्रात काल शौच से निवृत्त होकर लौटते समय आचार्यश्री के साथ आपकी भेंट हुई। आचार्य तुलसीजी ने गुरुदेवश्री से पूछा—कल हमने साहित्य प्रेषित किया था, वह आपने देखा होगा। बताइए, वह आपको कैसा लगा ?

गुरुदेवश्री ने कहा—साहित्य के क्षेत्र मे आपकी प्रगति देखकर मन में आल्हाद होता है। आप सगठन के व जैन एकता के प्रबल पक्षधर है तो आपके द्वारा साहित्य भी वैसा ही प्रकाशित होना चाहिए जो एकता की दृष्टि से सहायक हो। जिस साहित्य से विघटन पैदा होता है, राग-द्वेष की अभिवृद्धि होती है, उसका प्रकाशन करवाना आज के युग मे कहाँ तक उपयुक्त है ?

आचार्य तुलसी—ऐसा कौन सा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जो आपकी दृष्टि से अनुचित है ?

गुरुदेवश्री ने कहा—'भिक्षु दृष्टान्त' जैसे ग्रन्थ का प्रकाशन मैं उचित नही मानता।

आचार्य तुलसी—'भिक्षु दृष्टान्त' मे अनेक ऐतिहासिक सत्य तथ्य रहे हुए हैं, अतः उनका प्रकाशन करवाना आवश्यक समझा गया।

गुरुदेव—'भिक्षु दृष्टान्त' की तरह उस युग के दृष्टान्तो का सकलन जो भिक्षु दृष्टान्त के खण्डन के रूप मे है, वह संकलन मेरे पास है, जिसे पढकर पाठक के दिल मे राग-द्वेष की आग भडक उठे, क्या उसका भी प्रकाशन हमें करवाना चाहिए ?

गुरुदेवश्री ने जीतमलजी महाराज, कविवर नेमिचन्दजी महाराज के पद भी सुनाये जिनमे तेरापन्थ के सम्बन्ध मे कटु आलोचना थी। जो उस युग की भावना का चित्र था। जिन्हे सुनकर आचार्य तुलसीजी के चेहरे पर से

ऐसा परिज्ञात हो रहा था कि 'भिक्षु दृष्टान्त' का प्रकाशन करवाकर उचित नही किया; क्योकि प्रतिक्रिया के रूप मे ऐसा साहित्य प्रकाशित किया जाएगा तो उससे दरार बढेगी, घटेगी नही।

दूसरी बार जोधपुर में जैन एकता को लेकर गुरुदेवश्री आदि से लगभग एक घण्टे तक वार्तालाप हुआ। प्रस्तुत वार्तालाप अत्यन्त स्नेह-सौजन्यपूर्ण क्षणो में सम्पन्न हुआ। इस वार्तालाप में उपाध्याय हस्तीमलजी महाराज भी सम्मिलित थे। गुरुदेवश्री ने वताया कि जैन एकता की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि हम इस सम्बन्ध में जागरूक न हुए तो आने वाली पीढी हमारे पर विचार करेगी और वह एकता तभी सम्भव है कि मच पर ही नही, किन्तु प्रत्येक व्यवहार मे ऐसा कार्य किया जाय जिससे एकता में बाधा उपस्थित न हो। दोनो ओर से यह प्रयास होना चाहिए। एक ओर का प्रयास सफल नही हो सकता। आचार्य तुलसीजी ने भी आचार्यश्री के स्वर मे स्वर मिलाते हुए कहा—"आपका चिन्तन सुलझा हुआ है और उसी दृष्टि से हम प्रयत्न करेंगे तभी सफल हो सकेंगे।"

इस प्रकार राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक, आध्यात्मिक प्रभृति विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित शताधिक व्यक्ति, चिन्तक व मूर्धन्य मनीषीगण, श्रद्धेय सदगुरुवर्य के सम्पर्क में आये हैं और आते रहते हैं। किन्तु विस्तार के भय से मैं उन सभी संस्मरणो को यहाँ नही दे रहा हूँ। आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज, आचार्यश्री काशीराजजी महाराज, गणी उदयचन्दजी महाराज, आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज, उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज, आचार्य श्री नानालालजी महाराज, आचार्य हस्तीमलजी म०, आचार्य खूबचन्दजी म०, आचार्य श्री सहस्त्रमलजी महाराज, जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज, उपाध्याय किस्तूरचन्दजी महाराज, मालवकेसरी सौभाग्यमलजी महाराज, शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी म०, आचार्य गुलाबचन्दजी महाराज, आचार्य रूपचन्द जी म०, कविवर नानचन्दजी महाराज, मुनि सन्तबालजी, आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी महाराज, उपाध्याय अमरमुनिजी म०, उपाध्याय फूलचन्दजी महाराज, प्रवर्तक पन्नालालजी महाराज, कविवर्य चौथमलजी म०, मरुधर केसरी मिश्रीमलजी महाराज, युवाचार्य मधुकर मुनिजी म०, आचार्य श्री घासीलालजी म०, आचार्य पुरुषोत्तमलालजी म०, आदि स्थानकवासी समुदाय के मूर्धन्य मनीषीगण तथा पुरातत्त्ववेत्ता पद्मश्री जिनविजयजी, गुरुदेवश्री से चन्देरिया, चित्तौड़ तथा अहमदाबाद में अनेको बार मिले और इतिहास तत्त्व महोदधि आचार्य विजयेन्द्र सूरिजी, इतिहासवेत्ता मुनि श्री कल्याणविजयजी, डा० मुनि कान्ति-

सागरजी, आचार्य रामचन्द्र सूरिजी, आचार्य विजयधर्म सूरिजी, आचार्य समुद्र सूरिजी, आचार्य मुनि श्री यशोविजयजी, गणिवर्य पं० मुनि श्री अभय सागरजी, डा० मुनि नगराजजी, डी० लिट०, पं० मुनि श्री नथमलजी, चारित्र चक्र चूडामणि दिगम्बर आचार्य शान्तिसागरजी, आचार्यप्रवर देशभूषणजी, आचार्य विद्यानन्दजी, महन्त दर्शनरामजी, डॉ० एस० एस० बार्लिगे, डॉ० टी० जी० कलघटगी, डॉ० प्रेमसुमन जैन, डॉ० कमलचन्द सोगानी, डॉ० भागचन्द्र 'भास्कर', डॉ० संगमलाल पाण्डेय, इतिहासरत्न श्री अगरचन्दजी नाहटा, जस्टिस श्री टी० के० तुकोल, जस्टिस इन्द्रनाथ मोदी, जस्टिस सोमनाथ मोदी, जस्टिस श्रीकृष्णमलजी लोढा, जस्टिस कानसिंह परिहार, जस्टिस कान्ता भटनागर, जस्टिस दिनकरलाल मेहता, जस्टिस मिलापचन्द जैन, जस्टिस अग्रवाल, श्री ऋषभदासजी रांका, डॉ० जगदीशचन्द्रजी जैन, डॉ० ए० डी० बत्तरा, डॉ० आनन्दप्रसाद दीक्षित, डॉ० नथमल टाटिया, आचार्य निरंजननाथ, दिनेशनन्दिनी डालमिया, डॉ० डी० एस० कोठारी, सेठ अचल-सिंहजी, सोलिसिटर जनरल श्री चिमनभाई चक्कूभाई शाह, पद्मश्री सेठ मोहनलालजी चोरडिया, सेठ विनयचन्द दुर्लभजी, खेलशकर दुर्लभजी, सेठ हीराचन्द, बालचन्द आदि व्यक्तियो से गुरुदेवश्री की विभिन्न विषयो पर विचारचर्चाएँ हुईं, और सभी गुरुदेवश्री के स्नेह-सौजन्यपूर्ण सद्व्यवहार से प्रभावित हुए। वस्तुतः स्नेह ऐसा सुनहरा धागा है जिसमे हर कोई बाँधा जा सकता है।

□□

४ गुरुदेवश्री के विहार-चर्या और वर्षावास

श्रमण सस्कृति का श्रमण घुमक्कड़ है। हिमालय से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक वह पैदल परिभ्रमण कर जन-जन के अन्तर्मानस में धर्म की ज्योति जगाता है। धर्म से विमुख बने हुए व्यक्तियो को धर्म का सही मर्म बतलाता है। सरिता की सरस धारा के समान चलते रहना ही उसको पसन्द है। भगवान महावीर ने ऋषि-मुनियो के लिए कहा है "विहारचरिया इसिण पसत्था" श्रमण ऋषियो के लिए विहार करना प्रशस्त है। जैन श्रमणो के लिए ही नही, वैदिक संन्यासियो के लिए और बौद्ध भिक्षुओ के लिए भी परिभ्रमण करना आवश्यक माना है। जीवन की गतिशीलता के साथ पैरों की गतिशीलता का कोई अदृष्ट सम्बन्ध रहना चाहिए। नीतिकारों ने देशाटन को चातुर्य का कारण माना है—"देशाटनं पण्डितमित्रता च" उपनिषदकारों ने "चरैवेति चरैवेति" सूत्र के द्वारा केवल भावात्मक गतिशीलता को ही नही अपितु परिभ्रमण को विभिन्न उपलब्धियों का हेतु माना है। वृद्धश्रवा इन्द्र ने सत्य ही कहा है—"चरती चरतो भग", जो बैठा रहेगा उसका भाग्य भी बैठा रहेगा, जो चलता रहेगा उसका भाग्य भी गतिशील रहेगा। तथागत बुद्ध का मन्तव्य है जैसे गेंडा अकेला वन में निर्भय होकर घूमता है वैसे ही भिक्षुओ को निर्भय होकर घूमना चाहिए। एक समय उन्होने अपने साठ शिष्यो को बुलाकर कहा—

> चरथ भिक्खवे बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय।
> चरथ भिक्खवे चारिका, चरथ भिक्खवे चारिका॥

'हे भिक्षुओ! बहुत से लोगों के हित के लिए और अनेक लोगों के सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ! अपनी जीवन चर्या के लिए सतत चलते रहो, सतत भ्रमण करते रहो।

उन भिक्षुओ ने तथागत बुद्ध से पूछा—"भदन्त! अज्ञात प्रदेश में जाकर लोगों को हम क्या उपदेश दें?"

उत्तर में बुद्ध ने कहा—

"पाणी न हतव्वो
अदिन्नं न दातव्वं
कामेसु मुच्छा न चरितव्वा
मुसा न भासितव्वा
मज्जं न पातव्व ॥"

अर्थात्—"प्राणियो की हिंसा मत करो, चोरी मत करो, कामासक्त मत बनो, मृषा मत बोलो, और मद्य मत पियो।"

बौद्ध धर्म के विश्व के सुदूर अंचलों मे फैलने का मुख्य कारण बौद्ध भिक्षुओ का सतत पैदल परिभ्रमण ही है। बौद्ध भिक्षुओं ने घूम-घूमकर अपने आचरण व उपदेशों के द्वारा लंका, जावा, सुमात्रा, बर्मा, श्याम, चीन, जापान, तिब्बत प्रभृति एशिया मे धर्म, नीति, सभ्यता और संस्कृति का प्रचार किया।

महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन ने "घुमक्कड शास्त्र" नामक एक ग्रन्थ लिखा है जिसमे उन्होने अतीत काल के घुमक्कडो का वर्णन करते हुए घुमक्कडी के अनेक लाभ बताये है। उन्होने भगवान महावीर को 'घुमक्कड राज' पद प्रदान किया है। भगवान महावीर ने भी अपने श्रमणों और श्रमणियो को एक दिन कहा था—"भारडपक्खीव चरेऽप्पमत्ते—हे श्रमणो! भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त होकर विहार करो, भ्रमण करो, विचरण करो।" जैन और बौद्ध श्रमणो के विहार करने के कारण ही उस प्रदेश का नाम विहार हो गया। एक पाश्चात्य विचारक ने भी कहा है—जो पद-यात्रा करता है, उसी की यात्रा सर्वोत्तम है—He travels best, who travels on foot

मानव जीवन की गहनता, जीवन की वास्तविक अनुभूति और सांस्कृतिक अध्ययन तथा नैतिक परम्पराओ का तलस्पर्शी अनुशीलन जो एक घुमक्कड कर सकता है उसकी कल्पना एक वाहन-विहारी नही कर सकता। यह सत्य है, कि पैदल घूमना फूलो का मार्ग नही, काँटो का मार्ग है; सुख-सुविधाओ का मार्ग नही, दुःखो का मार्ग है, कष्टसहिष्णु व्यक्ति ही इस पथ का पथिक हो सकता है। चलते समय कभी-कभी आपत्तियाँ भी आती हैं, तो कभी-कभी आनन्द भी। कही पर स्नेह-सद्भावना और सत्कार का अमृत मिलता है तो कही द्वेष, दुर्भावना और दुत्कार का हलाहल जहर भी मिलता है। कही पर भव्य भवन मिलते हैं, तो कही पर रहने के लिए टूटी-फूटी झोपडी भी नही मिलती। कही घी घना तो कही मुट्ठी भर चना भी नसीब नही होते। एतदर्थ ही एक कवि ने कहा है—

"परदेश कलेश नरेशहुं को।"

अर्थात्—"परदेश मे नरेश को भी कष्ट मिलता है" तो साधारण व्यक्ति की बात ही क्या ? किन्तु सच्चा साधक विहार मे आने वाली कठिनाइयो, विघ्न-बाधाओ तथा तूफानों को देखकर न घबराता है, न झिझकता है, न ठिठकता है और न रुकता है; किन्तु उस समय अपनी अलमस्ती में चलता हुआ एक उर्दू शायर से वह प्रेरणा प्राप्त कर लेता है—

"काट लेना हर कठिन मजिल का कुछ मुश्किल नहीं।
इक जरा इन्सान मे चलने की आदत चाहिए॥"

विहार में—यात्रा में वह नये-नये व्यक्तियो से, नये-नये गाँवो से, नये-नये मकान और नये-नये खान-पानो से साक्षात करता हुआ शेर की तरह अपने ध्येय की ओर बढता जाता है। विघ्न-बाधाएँ और तूफानो को देखकर उसके कदम न लडखडाते है, न डगमगाते है; किन्तु हिमालय की चट्टान की तरह वह अडिग रहता है।

आज नित नये वाहनो के विकास ने क्षेत्र की दूरी को संकुचित कर दिया है। जल-स्थल और अनन्त आकाश की अगम्यता भी धीरे-धीरे गम्यता मे परिणत हो रही है तथापि जैन श्रमण प्राचीन परम्परा के अनुसार पादचार से ग्रामानुग्राम विचरण करता है। विहारचर्या जन सम्पर्क की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तेज वाहनो पर चलने से गाँवो और शहरो के व्यक्तियों से सम्पर्क नही हो सकता। जैन श्रमण प्रव्रज्या ग्रहण करते ही जीवन भर के लिए पदयात्री बन जाता है। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य ने अपने जीवन में बहुत बड़ी-बडी पदयात्राएँ की हैं। उन्होने मेवाड, पंचमहल, मारवाड़, ढुंढार, भरतपुर, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, खानदेश, सौराष्ट्र, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाड़, आंध्र आदि प्रान्तो की अनेक बार यात्राएँ की है, मारवाड और मेवाड के छोटे-छोटे गाँवो मे आप पधारे है। राजस्थान से बम्बई और पूना तक आपने पाँच बार यात्रा की और प्रत्येक बार की यात्रा पहले की यात्रा से अधिक प्रभावशाली रही। प्रथम यात्रा में आपश्री बम्बई मे दो महीने तक रुके। दूसरी यात्रा मे बम्बई के विविध अंचलो में बारह महीने तक रुके। तृतीय यात्रा के प्रथम चरण मे ६ महीने तक और द्वितीय चरण मे दो वर्ष तक रुके। इस समय मेरे द्वारा सम्पादित किया हुआ कल्पसूत्र का गुजराती अनुवाद, कान्दावाडी जैन सघ के द्वारा प्रकाशित हुआ और उसकी प्रथम आवृत्ति ३००० प्रतियाँ सिर्फ ५ दिन मे समाप्त हो गयी।

पुनः द्वितीय आवृत्ति ८ दिन में समाप्त हो गयी। कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियों ने उसकी लोकप्रियता को देखकर आलोचना भी की, किन्तु उसकी लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढती चली गयी। चतुर्थ यात्रा मे दक्षिण की ओर बढना था तो सिर्फ चालीस दिन तक रहे। किन्तु इन चालीस दिनो में अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम रहा। स्थान-स्थान पर आपश्री के जाहिर प्रवचन हुए। चौपाटी पर महावीर जयन्ती का पावन-प्रसग होने से लगभग ७०-८० हजार जनता थी। भात-बाजार के जाहिर प्रवचन मे १०-१५ हजार जनता थी। बम्बई मे सर्वप्रथम राजस्थानी मुनियो का स्वागत और विदाई समारोह मनाया गया, जिसमे बम्बई के गणमान्य नेतागण उपस्थित थे। इन चालीस दिन के प्रवास मे सैकडो कार्यकर्तागण गुरुदेवश्री के निकट सम्पर्क मे आये और गुरुदेवश्री के प्रबल प्रताप से प्रभावित हुए। पाँचवी यात्रा दक्षिण भारत से राजस्थान आते समय की है। इस यात्रा में बम्बई के विविध अचलो में सिर्फ अठारह दिन विराजे। अठारह दिन मे अत्यधिक व्यस्त कार्यक्रम रहा। राजस्थानी संघ ने उपाश्रय के लिए लाखो का दान दिया। अनेक गण-मान्य सज्जनो के साथ साहित्यिक और सास्कृतिक विचार-चर्चाएँ भी हुईं।

अहमदाबाद भी गुरुदेव चार बार पधारे। प्रथम बार में प्रेमाबाई हॉल मे जाहिर प्रवचन हुए। दूसरी व तीसरी बार के प्रवास मे भी स्थान-स्थान पर आपके जाहिर प्रवचनो का आयोजन हुआ। दूसरी और तीसरी बार में आपश्री क्रमश एक महीना तथा दस दिन विराजे। चतुर्थ यात्रा मे आपने वहाँ पर वर्षावास किया। श्रावको में साम्प्रदायिक मतभेद की स्थिति चल रही थी, जो आपके वहाँ पर वर्षावास करने से मिट गई और जन-मानस मे स्नेह का सरस वातावरण निर्माण हुआ। भगवान महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी का सुनहरा प्रसग था। श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी जैन समाज मे निर्वाण शताब्दी न मनायी जाय इस सम्बन्ध मे तीव्र विरोध था। उस विरोध मे आपश्री के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के कारण अहमदाबाद मे स्थित मन्दिरमार्गी समाज के मूर्धन्य आचार्य श्री नन्दन सूरिजी ने इस आयोजन में भाग लिया। उग्र विरोध मे भी निर्वाण महोत्सव का उत्सव शानदार रूप से मनाया गया। हठीसिंह की वाडी मे तथा नगरसेठ के वडे में सामूहिक रूप से आयोजन हुए एव राजस्थानी सोसाइटी के विशाल मैदान में मोरारजी भाई देसाई के द्वारा 'भगवान महावीर : एक अनुशीलन' ग्रन्थ का विमोचन किया गया और वह आपश्री को समर्पित किया गया।

पूना मे भी आपश्री के दो वर्षावास हुए। पहले वर्षावास की अपेक्षा

द्वितीय वर्षावास अधिक प्रेरणादायी रहा। इस वर्षावास में अनेक मूर्धन्य मनीषियो से सम्पर्क बढा। 'जैन दर्शन : स्वरूप और विश्लेषण', 'धर्म का कल्पवृक्ष : जीवन के आँगन मे', 'भगवान महावीर की प्रतिनिधि कथाएँ' आदि अनेक ग्रन्थो के विमोचन भी हुए। आपश्री की प्रेरणा से विश्वविद्यालय मे जैन चेयर की स्थापना हुई। पुष्कर गुरु सहायता फंड की सस्थापना हुई। तपस्या का ठाठ भी ज्यादा रहा।

जयपुर मे आपश्री के तीन वर्षावास हुए और जोधपुर मे चार वर्षावास हुए। इन वर्षावासो मे अध्ययन-चिन्तन-मनन के साथ ही जैन एकता के लिए आपश्री ने अथक परिश्रम किया। आपश्री के वर्षावासो मे उत्कृष्ट तप व जप की साधना होती है। आपश्री ने जहाँ भी वर्षावास किये, वहाँ पर स्नेह-सद्भावना का निर्माण किया। युवको में धर्म के प्रति आस्थाएँ जागृत की। आपश्री की कर्नाटक प्रान्त की यात्रा भी अत्यन्त यशस्वी रही है। कर्नाटक प्रान्त में आप जहाँ भी पधारे, वहाँ पर अपूर्व उत्साह का संचार हुआ। जन-जन के अन्तर्मानस मे जैन धर्म व दर्शन को समझने की निर्मल भावना अँगडाइयाँ लेने लगी। अनेक शिक्षण सस्थाओं में आपके प्रवचन हुए। रायचूर, जहाँ एक सौ दस घर स्थानकवासियो के होने पर भी ग्यारह मासखमण तथा अन्य ६१ व अन्य तपस्याएँ अत्यधिक हुईं। बेंगलोर वर्षावास में लगभग ४६ मासखमण और तप की जीती-जागती प्रतिमा अ० सौ० धापुबाई गोलेच्छा ने १५१ की उग्र तपस्या की, तथा अन्य लघु तपस्याएँ इतनी अधिक हुईं कि सभी विस्मित हो गये। 'पुष्कर गुरु जैन युवक संघ' और 'पुष्कर गुरु जैन पाठशाला' तथा 'पुष्कर गुरु जैन भवन' का भी निर्माण हुआ।

मद्रास दक्षिण भारत का जाना-माना हुआ औद्योगिक केन्द्र है, वहाँ के राजस्थानी बन्धुओ ने अनेक सामाजिक, राष्ट्रीय व सास्कृतिक कार्य करके अपनी गौरव गरिमा मे चार चाँद लगाये हैं। स्थानकवासी जैन समाज के द्वारा संचालित अनेक शिक्षण सस्थाएँ वहाँ पर है। उच्चतम शिक्षा केन्द्र से लेकर सामान्य शिक्षा केन्द्र तक की व्यवस्था है। समाज द्वारा अनेक आरोग्य केन्द्र भी सचालित हैं। पूज्य गुरुदेवश्री का सन् १९७८ का शानदार वर्षावास मद्रास में हुआ। मद्रास मे भयंकर गर्मी पडती है इसलिए लम्बी तपस्याएँ वहाँ पर बहुत ही कम होती हैं। पर पूज्य गुरुदेवश्री के वर्षावास में इक्कीस मासखमण हुए। मानव समुदाय की सेवा शुश्रूषा के लिए मानव राहत की व्यवस्था है। जिसमें उदारमना महानुभावों ने लाखो का दान दिया। पूज्य गुरुदेवश्री के पावन उपदेश से प्रभावित होकर श्रावक संघ ने 'दक्षिण भारतीय

स्वाध्याय संघ' की स्थापना की। इस स्वाध्याय सघ की यह महान विशेषता है कि यह एक असाम्प्रदायिक सस्था है। इस सस्था का मुख्य उद्देश्य है— दक्षिण भारत मे शुद्ध स्थानकवासी धर्म का प्रचार करना। पर्युषण के पुण्य-पलो मे यत्र-तत्र स्वाध्यायी बन्धु जाकर स्वयं भी धर्म की साधना करते हैं और दूसरो को भी करवाते है। दूसरी विशेषता यह है कि बडे से बडे उद्योग-पति भी इस स्वाध्याय सघ मे सक्रिय भाग लेते है।

इस वर्षावास में केरल की राज्यपाल श्रीमती ज्योति वेंकटाचलम्, तमिलनाडु के राज्यपाल प्रभुदास पटवारी, राज्यसभा दिल्ली के उपाध्यक्ष श्री रामनिवास मिर्धा, संसद सदस्य अनन्तदेव (गुजरात), हुकमचन्द कच्छवाई (मध्यप्रदेश), कचरूलाल चोरडिया (म०प्र०), युवराज (बिहार) डा० एस० बद्रीनाथ, सत्यनारायणजी गोयनका प्रभृति अनेक गणमान्य नेतागण पूज्य गुरुदेवश्री के सम्पर्क मे आये, उनसे विविध विषयो पर वार्तालाप आदि भी हुए। मद्रास विश्वविद्यालय मे 'जैन इन्डोमेन्ट' की स्थापना हुई। बापालाल कम्पनी के अधिपति सुरेन्द्रभाई मेहता ने उदारतापूर्वक अनुदान दिया। श्री शकर नेत्र चिकित्सालय में नेत्र विशेषज्ञो के निर्माण हेतु सुरेन्द्रभाई तथा शी० यू० शाह की ओर से लाखो का अनुदान दिया गया।

अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित

मद्रास का यशस्वी वर्षावास सम्पन्न कर तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रान्त को पावन करते हुए हैदराबाद पधारे। आचार्य सम्राट आनन्द ऋषि जी म० महाराष्ट्र से विहार कर पहले ही वहाँ पधार गये थे। पूज्य गुरुदेव की ५६वी दीक्षा जयन्ती है। ५ जून १६७८ को गांधी भवन के विशाल हॉल में विशिष्ट नागरिको की उपस्थिति मे आचार्य सम्राट आनन्द ऋषिजी ने उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म० की उल्लेखनीय साहित्य सेवा तथा संघ सेवाओ के उपलक्ष मे 'उपाध्याय पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ' तथा खद्दर की श्वेत चादर समर्पित की। यह १२०० पृष्ठ का विराट्काय ग्रन्थ ६ खण्डो में विभक्त है। इस ग्रन्थ में १२५ वरिष्ठ विद्वानो के लेख हैं, जिनमे भाषा की दृष्टि से ८५ लेख हिन्दी मे है और ४० लेख अँग्रेजी मे है।

इस समारोह की अध्यक्षता राज्यपचायत मन्त्री नागारेड्डी ने की। टेक्नोलोजी मन्त्री हयग्रीवाचारी, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री गोपालराव इकबोटे, श्री पी० एल० भण्डारी, डा० ए० डी० वत्तरा आदि प्रमुख व्यक्तियों ने उस समारोह मे चार चाँद लगाये थे।

इन विहार यात्राओं में कभी भयंकर गर्मी का अनुभव हुआ, तेज लू ने भी आपकी परीक्षा ली और कभी सनसनाती हुई सर्दी से ठिठुरते रहे, तो कभी वर्षा के कारण भीगते हुए रास्ता पार किया। बम्बई के विहार में नदी-नालों से बचने के लिए रेल की पटरी के मार्ग से चलना पड़ता है। वहाँ पर कंकड़ो से पैर छलनी हो जाते हैं। वर्षा के दिनो में भीगी हुई चिकनी मिट्टी के चिमट जाने से चलना भी दूभर हो जाता है। इस प्रकार अनेक कठिनाइयो के बावजूद भी आपकी विहार यात्रा का असस्र स्रोत चालू है। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे आप उसी सहज भाव से आते-जाते है जेसे कोई व्यक्ति अपने ही भव्य भवन के विविध कमरो में आता-जाता है। आप चाहे किसी भी प्रान्त में जायँ वहाँ आपको कोई परायापन महसूस नही होता। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की उदात्त भावना के कारण आपको सर्वत्र अपार आनन्द को अनुभूति होती हैं। सक्षेप में आपश्री के वर्षावासो की सूची इस प्रकार है—

संख्या	ई० सं०	वि० स०	क्षेत्र का नाम	प्रान्त का नाम
१	१९२४	१९८१	समदडी	मारवाड़
२	१९२५	१९८२	नान्देशमा	मेवाड़
३	१९२६	१९८३	सादड़ी	मारवाड़
४	१९२७	१९८४	सीवाना	मारवाड
५	१९२८	१९८५	जालौर	मारवाड़
६	१९२९	१९८६	सिवाना (सकारण)	,,
७	१९३०	१९८७	खाण्डप	मारवाड
८	१९३१	१९८८	गोगुन्दा	मेवाड
९	१९३२	१९८९	पीपाड़	मारवाड़
१०	१९३३	१९९०	भंवाल	मारवाड
११	१९३४	१९९१	ब्यावर	मारवाड़
१२	१९३५	१९९२	लीमडी	गुजरात
१३	१९३६	१९९३	नासिक	महाराष्ट्र
१४	१९३७	१९९४	मनमाड	महाराष्ट्र
१५	१९३८	१९९५	कम्बोज	मेवाड
१६	१९३९	१९९६	सीवाना	मारवाड
१७	१९४०	१९९७	खाण्डप	मारवाड़
१८	१९४१	१९९८	समदडी	मारवाड़

संख्या	ई० स०	वि० सं०	क्षेत्र का नाम	प्रान्त का नाम
१९	१९४२	१९९९	रायपुर	मारवाड
२०	१९४३	२०००	पीपाड	मारवाड
२१	१९४४	२००१	जोधपुर	मारवाड़
२२	१९४५	२००२	नान्देशमा	मेवाड़
२३	१९४६	२००३	धार	मध्यप्रदेश
२४	१९४७	२००४	नासिक	महाराष्ट्र
२५	१९४८	२००५	घाटकोपर (वम्वई)	महाराष्ट्र
२६	१९४९	२००६	चूडा	गुजरात-सौराष्ट्र
२७	१९५०	२००७	नान्देशमा	मेवाड़
२८	१९५१	२००८	सादडी	मारवाड
२९	१९५२	२००९	सिवाना	मारवाड
३०	१९५३	२०१०	जयपुर	मारवाड़
३१	१९५४	२०११	दिल्ली	दिल्ली
३२	१९५५	२०१२	जयपुर (सकारण)	मारवाड़
३३	१९५६	२०१३	जयपुर (सकारण)	मारवाड
३४	१९५७	२०१४	उदयपुर	मेवाड़
३५	१९५८	२०१५	वागपुरा	मेवाड़
३६	१९५९	२०१६	जोधपुर	मारवाड़
३७	१९६०	२०१७	व्यावर	मारवाड
३८	१९६१	२०१८	सादडी	मारवाड
३९	१९६२	२०१९	जोधपुर	मारवाड़
४०	१९६३	२०२०	जालौर	मारवाड़
४१	१९६४	२०२१	पीपाड	मारवाड़
४२	१९६५	२०२२	खाण्डप	मारवाड़
४३	१९६६	२०२३	पदराडा	मेवाड़
४४	१९६७	२०२४	बालकेश्वर (बम्बई)	महाराष्ट्र
४५	१९६८	२०२५	घोडनदी	महाराष्ट्र
४६	१९६९	२०२६	पूना	महाराष्ट्र

संख्या	ई० स०	वि० सं०	क्षेत्र का नाम	प्रान्त का नाम
४७	१९७०	२०२७	दादर (बम्बई)	महाराष्ट्र
४८	१९७१	२०२८	कान्दावाड़ी (बम्बई)	महाराष्ट्र
४९	१९७२	२०२९	जोधपुर	मारवाड
५०	१९७३	२०३०	अजमेर	राजस्थान
५१	१९७४	२०३१	अहमदाबाद	गुजरात
५२	१९७५	२०३२	पूना	महाराष्ट्र
५३	१९७६	२०३३	रायचूर	कर्नाटक
५४	१९७७	२०३४	बेंगलोर	कर्नाटक
५५	१९७८	२०३५	मद्रास	तमिलनाडु
५६	१९७९	२०३६	सिकन्दराबाद	आन्ध्र
५७	१९८०	२०३७	उदयपुर	मेवाड
५८	१९८१	२०३८	राखी	मारवाड़
५९	१९८२	२०३९	जोधपुर	मारवाड़
६०	१९८३	२०४०	मदनगंज-किशनगढ	राजस्थान

□□

५ संस्मरण--कुछ मीठे : कुछ कड़वे

दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम

सन् १९२६ में आपका वर्षावास सादडी (मारवाड) मे था। उस समय आपके पूज्य गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज और दौलतरामजी महाराज वहाँ पर थे। एक दिन भिक्षा मे एक लड्डू आया। वह लड्डू कौन खाये—यह प्रश्न था। गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज ने आपसे कहा—पुष्कर! तू सबसे छोटा है, अतः लड्डू का अधिकारी तू है। आपश्री ने गुरुदेव से निवेदन किया—"गुरुदेव! आप बडे है, इसलिए सरस आहार आपको लेना चाहिए या इन वृद्ध महाराज को।" अन्त मे यह निर्णय हुआ कि शेष आहार को कर लिया जाय, बाद मे लड्डू का वितरण कर देंगे। यह विचार कर आहार के बीच में जो लघु पट्टा रखा हुआ था उस पर लड्डू रख दिया। स्थानक मे ही पीपल का पेड था। उस पर एक बन्दर छिपकर बैठा हुआ था। उसने लड्डू को देखा तो धीरे से नीचे उतरा और चट से लड्डू को लेकर चलता बना। आपश्री ने गुरुदेव से कहा—गुरुदेव! 'दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम' इसी को कहते हैं।

उत्कट सेवा भावना

सन् १९३४ मे आपका चातुर्मास ब्यावर था। चातुर्मास मे जैन श्रमण विहार नही करते, वे एक स्थान पर स्थिर रहते है। किन्तु स्थानांग सूत्र के पाँचवे ठाणे मे चातुर्मास मे भी जैन श्रमण विहार कर सकते है, ऐसा उल्लेख है। वे कारण है—ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चारित्र के लिए, आचार्य या उपाध्याय की मृत्यु के अवसर पर, वर्षा क्षेत्र से बाहर रहे हुए आचार्य या उपाध्याय की वैय्यावृत्य करने के लिए। इस विधान के अनुसार आचार्यश्री अमरसिहजी महाराज के सम्प्रदाय के वयोवृद्ध प्रवर्तक श्री दयालचन्दजी महाराज जिनका वर्षावास उस समय समदडी मे था, वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गये। तब आपश्री वर्षावास मे विहार कर ब्यावर से समदड़ी पधारे।

सत्याग्रह नहीं हठाग्रह

सन् १९३६ मे आपका चातुर्मास नासिक था। उस समय आपश्री बम्बई होकर नासिक पधारे थे। उस समय बम्बई में सत्याग्रही मुनिश्री मिश्रीलालजी ने आचार्य हुक्मीचन्दजी महाराज के पूज्य जवाहरलालजी महाराज और पूज्य मुन्नालालजी महाराज की एकता करने हेतु सत्याग्रह कर रखा था। सत्याग्रह के साठ दिन पूरे हो चुके थे। बम्बई सघ के आग्रह पर आपश्री ने उन्हे समझाने का प्रयास किया कि जैन श्रमणो को इस प्रकार फुट-पाथ पर रहकर अनशन नही करना चाहिए। यह सत्याग्रह नही हठाग्रह है। इससे जिनशासन की प्रभावना के स्थान पर हीलना होती है। उन्हे गुरुदेवश्री के तर्क समझ मे आगये; किन्तु वे अपने हठ को छोडने के लिए प्रस्तुत न थे। परन्तु अन्त मे उन्हे सफलता नही मिली और डॉक्टर के कहने पर अनशन छोडना पडा। इस समय उन्हे ध्यान आया कि आपश्री के कहने पर छोड देता तो अच्छा था।

प्रकाण्ड पाण्डित्य

सन् १९३७ में मनमाड चातुर्मास के पूर्व रारोही मे विदुषी महासती राजकुँवरजी और जैन जगत की उज्ज्वल तारिका उज्ज्वलकुमारीजी आपसे मिली। आपश्री के न्याय, दर्शन के प्रकाण्ड पाण्डित्य को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुईं और उन्होने आपश्री से पढने की जिज्ञासा व्यक्त की। किन्तु आपश्री का वर्षावास मनमाड निश्चित हो चुका था। अतः महासतीजी की भावना को मूर्त रूप नही दिया जा सका। क्योकि महासती राजकुंवरजी रुग्ण थी और वे पृथक रहने की स्थिति मे नही थी।

वृद्धा का षड्यन्त्र

सन् १९४० मे आपका चातुर्मास खाण्डप मे था। उस समय एक वृद्धा ब्राह्मणी आठ-दस व्यक्तियो को लेकर उपस्थित हुई। सन्तगण स्वाध्याय-ध्यान मे लीन थे। आते ही उस वृद्धा ने कहा—मेरा पुत्र यहाॅ पर है। मैं उसे लेने के लिए आयी हूँ। गुरुदेवश्री ने विनोद करते हुए कहा—हम यहाँ तीन साधु हैं, उसमे जो तुम्हे पसन्द हो उसे अपना पुत्र बना लो। वृद्धा ने तपाक से कहा—तू ही मेरा बेटा है। गुरुदेव ने कहा—इस जन्म का तो नही, हाॅ किसी जन्म मे तुम्हारा बेटा रहा हूँगा। इसलिए मेरे को देखकर तेरे मन में वात्सल्य भाव उमड़ रहा है। आज का दिन बड़ा अच्छा है। माँ मिल गयी। वृद्धा ने

आँखो से आँसू बरसाते हुए कहा—बेटा ! मेरे से मजाक न कर। सीधा घर को चल। गुरुदेव ने जरा गम्भीर होकर कहा—माँ ! तुम्हें भ्रम हो गया है। मैं तुम्हारा इस जन्म का पुत्र नही हूँ। तुम्हारे को किसने कहा कि मैं तुम्हारा बेटा हूँ। मेरा जन्म तो मेवाड मे हुआ था और मेरी आँखो के सामने ही मेरी माँ मर गयी थी, फिर तुम नई माँ कहाँ से आ गई ? उस वृद्धा ने आँखो से अंगारे बरसाते हुए कहा—झूठ है। बिल्कुल सफेद झूठ है। तेरी माँ मरी नही। मैं जिन्दा बैठी हूँ। आज से सोलह-सत्रह वर्ष पूर्व तू घर से भाग गया था और इन साधुओ के चगुल में फँसकर साधु बन गया और अब कहता है मेरी माँ मर गयी। उस समय उसने अपने साथ आये हुए आठ-दस व्यक्तियों को जिन्होने रस्सियाँ छिपाकर रखी हुई थी, उनको ओर देखते हुए कहा—क्या देखते हो टुकुर-मुकुर ? इसको रस्सियो से बाँधकर गाड़ी मे डालकर ले चलो। वे ज्यो ही आगे बढे त्यो ही गुरुदेव ने षड्यन्त्र को समझ लिया। अतः उन्हे ललकारते हुए कहा कि तुमने यदि मेरे को हाथ लगाया तो ठीक न होगा। अपनी खैर चाहते हो तो दूर ही खडे रहना। ज्यो ही उन्होने आपका आध्यात्मिक तेज देखा त्योंही वे स्तम्भित हो गये। वृद्धा ने जब यह देखा कि उसका षड्यन्त्र सफल नही हो रहा है तो आँखो से आँसू बरसाते हुए कहा—लाल ! हम तेरे साथ जबरदस्ती नही करेंगे। तू अपनी इच्छा से चल। गाँव के लोग इस कुतूहलपूर्ण वातावरण को देखने के लिए काफी सख्या मे उपस्थित हो गये। वहाँ एक समझदार व विवेकशील श्रावक थे—रघुनाथमल जी लुंकड। वे आगे आये। उन्होने सभी लोगो से कहा—तुम लोगो ने धर्म-स्थानक मे क्या तमाशा बना रखा है ? हाथ में लाठियाँ और रस्सियाँ क्यों लेकर आये हो ? तुम जिसे अपना पुत्र कहती हो, वह तुम्हारा पुत्र नही है। तुमने मिथ्या षड्यन्त्र रचा है। देखो, जहाँ के ये मुनिजी है उनकी जन्मस्थली के मुरब्बी लोग भी यहाँ दर्शनार्थ आये हुए हैं। उन्होने गुरुदेव की दीक्षा-पत्रिका आदि बतायी, जिससे साथ मे आने वाले व्यक्तियो की शका मिट गई और उन्होने कहा—वृद्धा के कहने से ही हम आये थे। हमे क्या पता कि यह किसका बेटा है ? सत्य तथ्य ज्ञात होने पर वे निराश होकर चल दिये। उनका षड्यन्त्र सफल न हो सका।

अठ्यानाश

सन् १९४२ का वर्षावास गुरुदेवश्री का रायपुर मे था। इस वर्षावास के पूर्व जब आप नाथद्वारा मे विराज रहे थे, उस समय नन्दलालजी रांका के पुत्र नजरसिंह ने गुरुदेव से दीक्षा के लिए प्रार्थना की, किन्तु पारिवारिक जनो

की अनुमति न होने से आपने उसे दीक्षा नहीं दी। किन्तु उन्होने व्याख्यान में ही मुनिवेष धारण कर स्वतः 'करेमि भते' का पाठ पढकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। रायपुर वर्षावास में उनकी माता वहाँ आयी। रुष्ट होकर आपश्री को गालियाँ देने लगी। आपश्री उसकी गालियो को शान्ति से सुनते रहे। जब आपने कोई प्रत्युत्तर नही दिया तब उसने हाथ की मुद्रा बनाते हुए कहा—तुम्हारा सत्यानाश जाना। गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा—माताजी ! सत्यानाश क्यो कहती हो ? अठ्यानाश कहो न ? सत्यानाश मे तो एक कर्म अवशेष रह जायगा जिससे मुक्ति नही होगी। अठ्यानाश होने पर ही मुक्ति होगी। उसका क्रोध कपूर की तरह उड गया। वह चरणो मे गिर पड़ी—गुरुदेव ! मोह बडा प्रबल है, जिसके कारण उचित और अनुचित का कुछ भी ख्याल नही रहता।

डाकू साधु बना

प्रस्तुत वर्षावास में शान्ति मुनि ने मासखमण का तप किया और ठाकुर गोविन्दसिहजी के अत्याग्रह पर राजमहल मे प्रवचन हुए। ठाकुर गोविन्दसिहजी ने मास, मदिरा का परित्याग किया। इस वर्षावास के पूर्व उस समय के प्रख्यात डाकू लक्ष्मणसिहजी करमावास मे आपके प्रवचन मे उपस्थित हुए। आपके प्रवचन को सुनकर उन्हे अपने कृत्यो पर ग्लानि हुई और बाद मे डाकूपने का परित्याग कर वे वैदिक परम्परा के साधु बने। सत्संग का कितना गहरा असर होता है ? यह इस घटना से सहज ही परिज्ञात होता है।

सूखी रोटी का स्वाद

सन् १९४३ मे आपका वर्षावास पीपाड में था। वर्षावास के पूर्व आप जोधपुर पधारे थे। रास्ते मे चौदह मील का विहार कर आप एक प्याऊ पर ठहरे। प्याऊ की देखरेख एक बाबा करते थे। बाबा ने आपको देखकर कहा कि—जैन सेठ की बनाई हुई यह प्याऊ है। उनके आदेश से मैं सदा यहाँ अचित्त पानी रखता हूँ। आप पानी ले लीजिए। मेरे पास दो सूखे और लूखे बाजरी के टिक्कर पडे हुए है, मेरे काम के नही हैं। आप चाहे तो उन्हे ले सकते हैं। गुरुदेव ने कहा—इस समय इतनी भयकर गर्मी हो चुकी है। गाँवो मे से भिक्षा लाना सम्भव नही है, क्योकि यहाँ से गाँव एक-एक मील दूर है। अतः आपश्री ने उससे एक टिक्कर ले लिया और आधा-आधा टिक्कर पानी से खाकर पानी पी लिया। चौदह मील चलकर आये थे, बड़ी तेज भूख लग रही थी, अतः टिक्कर खाने मे दिक्कत नही हुई। दूसरे दिन आप जोधपुर

पधारे जहाँ पर गोचरी मे बादाम और पिस्ते की कतलियाँ आयी। आपने कहा—जो उस सूखे टिक्कर मे स्वाद था, वह इन कतलियो में कहाँ ? वस्तुतः स्वाद भूख मे है; पदार्थ में नही। आज का मानव अधिक से अधिक खाने के पीछे दीवाना बना हुआ है। वस्तुतः जो भूख में खाया जाता है, वही मधुर है।

दृढ़ मनोबल

सन् १९४४ का वर्षावास पूर्ण कर आपश्री उदयपुर पधारे। ग्रीष्म का समय था। शाम को पाँच बजे आपश्री गोचरी के लिए पधारे। एक गृहस्थ के घर से भिक्षा लेकर लौट रहे थे कि आपश्री को चक्कर आ गया और सीढियो से नीचे गिर पडे। नीचे एक तीक्ष्ण पत्थर था। वह सिर में लग गया जिससे रक्त की धारा बह चली और आपश्री बेहोश हो गये। पौन घण्टे के पश्चात् जब आपको होश आया, तब आपने देखा कि लोग डोली की तैयारी कर रहे थे, आपको स्थानक ले जाने के लिए। आपने कहा—मैं डोली में नही बैठूँगा, पैदल चलकर ही स्थानक पहुँचूँगा। सूर्यास्त होने वाला था, इसलिए आपश्री ने न दवा ली और न टाँके ही लगवाये; किन्तु मुस्कराते हुए अपार वेदना को सहन करते रहे। ऐसा है आपका दृढ़ मनोबल।

ध्यान की प्रेरणा

सन् १९४६ मे आपका वर्षावास धार मे था, जिसे सुप्रसिद्ध साहित्य और काव्यप्रेमी महाराजा भोज की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। जहाँ पर कविकुल गुरु कालिदास के काव्यो का प्रणयन हुआ; ऐसी किंवदन्ती है। वही पर स्थानकवासी समाज के ज्योतिर्धर आचार्यश्री धर्मराजजी महाराज ने धर्म की प्रभावना हेतु अपने शिष्य के विचलित होने पर स्वय ने सथारा कर समाधिमरण प्राप्त किया था। वह पट्टा जिस पर आचार्यश्री ने सथारा किया था, उस पर प्रायः सन्त व सतीगण नही सोती हैं, किन्तु आपश्री उस पर चार महीने सोये। आपको स्वप्न में आचार्य प्रवर के दर्शन भी हुए और उन्होने ध्यान-साधना आदि के सम्बन्ध मे आपको प्रेरणा दी।

सगठन के सजग प्रहरी

सन् १९४८ का वर्षावास घाटकोपर बम्बई मे सम्पन्न कर आप अन्य स्थानो पर विचरते रहे। आपके अन्तर्मानस मे जैन समाज की एकता के लिए चिन्तन चल रहा था। घाटकोपर मे आपश्री की प्रबल प्रेरणा से उपाध्याय प्यारचन्दजी म०, आत्मार्थी श्री मोहन ऋषिजी महाराज, शतावधानी

पूनमचन्दजी महाराज, और परम विदुषी उज्ज्वलकुमारीजी आदि सन्त-सती-वृन्द वहाँ पर एकत्रित हुए। सन्त सम्मेलन की योजना बनायी और आपश्री ने एक पंचसूत्री योजना प्रस्तुत की—

(१) एक गाँव में एक चातुर्मास हो।
(२) एक गाँव में दो व्याख्यान न हो।
(३) एक दूसरे की आलोचना न की जाय।
(४) एक सम्प्रदाय के सन्त दूसरे सन्तो से मिलें।
(५) यदि मकान की सुविधा हो तो एक साथ ठहरा जाये।

सन् १९५१ मे आपका चातुर्मास सादड़ी था। उस समय आपश्री की प्रेरणा से सादडी में विराट् सन्त सम्मेलन हुआ और श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ की संस्थापना हुई। सघ की संस्थापना में आपश्री की विलक्षण प्रतिभा, सूझ-बूझ, संगठनशक्ति, नीव की ईंट के रूप में कार्य करती रही और सन् १९५२ में सिवाना वर्षावास में भी सगठन को अधिक से अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए आपश्री का चिन्तन चलता रहा जिसके फलस्वरूप सोजत में मन्त्रिमण्डल की बैठक हुई। उसमें सचित्ताचित्त के प्रश्न को लेकर गम्भीर चर्चाएँ हुई और एक आचारसहिता का निर्माण हुआ। जब कभी सम्मेलनों में विचार-चर्चा मे मतभेद होने के कारण दरार पड़ने की स्थिति पैदा हुई उस समय आपश्री नूतन और पुरातन विचार वाले सन्तो को समझाकर समस्या का समाधान करते रहे। आपश्री का यह स्पष्ट मत रहा कि सगठन के केवल गीत गाने से काम नही चलेगा। उसके लिए अपने स्वार्थों का बलिदान भी देना होगा। केवल मच पर लम्बा चौडा भाषण देना पर्याप्त नही है; किन्तु सच्चे हृदय से कार्य करने की आवश्यकता है। वस्तुतः आप सगठन के सजग प्रहरी हैं।

महास्थविर श्री जी का स्वर्गवास

सन् १९५५ और १९५६ मे आपश्री का वर्षावास राजस्थान की राजधानी जयपुर में था। प्रथम वर्षावास मे कविवर्य अमरचन्दजी महाराज, स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज, स्वामी फतेहचन्दजी महाराज, प० मधुकर मुनिजी महाराज और पं० कन्हैयालाल 'कमल' आदि चौदह सन्त आपश्री के साथ थे और द्वितीय वर्षावास मे व्याख्यान वाचस्पति श्रमण सघ के प्रधानमन्त्री श्री मदनलालजी महाराज आपश्री के साथ थे। इस वर्षावास के उपसंहार में कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को आपश्री के सद्गुरुदेव महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज का संथारे से स्वर्गवास हो गया।

अनुशासन

सन् १९५७ मे आपका चातुर्मास उदयपुर में था। उस समय आपश्री के कुशल नेतृत्व से प्रभावित होकर उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज ने मुनिश्री हस्तीमलजी और तपस्वी राजमलजी को अनुशासनवद्धता सिखाने के लिए उदयपुर वर्षावास हेतु प्रेषित किया। आपश्री ने स्नेह-सद्भावना के के साथ उन्हे रखा, जिसे देखकर सभी व्यक्ति चकित हो गये।

अखण्ड रहे यह सघ हमारा

सन् १९६० मे आपका वर्षावास ब्यावर मे था। पारस्परिक विचार-भेद के कारण श्रमण सघ की स्थिति विषम हो रही थी। उस स्थिति को सुलझाने हेतु वर्षावास के पश्चात् आपश्री विजयनगर पधारे, जहाँ मन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी महाराज वृद्धावस्था के कारण विराजित थे और आपके सन्देश को सम्मान देकर उपाध्याय हस्तीमलजी महाराज यहाँ पधार गये थे। आप तीनो ने मिलकर श्रमण संघ के सम्बन्ध में गम्भीर रूप से विचार-विनिमय किया और 'अखण्ड रहे यह सघ हमारा' इस विषय पर ऐतिहासिक क्वतव्य भी दिया, जिसका साराश इस प्रकार है—

युगो से समाज के हितैषियो के अन्तर्मानस मे यह आकांक्षा थी कि हमारे श्रद्धेय मुनिगण ज्ञान और चारित्र मे, आचार और विचार में उन्नत हो ने पर भी विभिन्न सम्प्रदायो मे विभक्त हैं। जिसके कारण जिनशासन की जो उन्नति होनी चाहिए, वह नही हो पा रही है। विभिन्न धाराओ मे प्रवाहित होने वाली सरिता अपने लक्ष्य स्थान पर नही पहुँच सकतो। लक्ष्य स्थल पर पहुँचने के लिए अनेकता नही, एकता आवश्यक है। यदि हमारे ये सन्त भगवन्त एक बन जायें, सुसंगठित और व्यवस्थित बन जायँ तो जिनशासन की महती प्रभावना हो सकती है; जैन धर्म की विजय-वैजयन्ती हिमालय से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक ही नही अपितु विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक फहरा सकती है।

अजरामपुरी अजमेर के पवित्र प्रांगण मे सन्त सम्मेलन का सफल आयोजन इसी भव्य भावना को लेकर किया गया था जिसमे सन्तगण ने सोत्साह भाग लिया। सगठन के महत्त्व पर गम्भीरता से विचार-विमर्श किया। यह अत्यधिक प्रसन्नता है कि हमारे प्रतिभासम्पन्न वयोवृद्ध व अनुभवी सन्तो ने उस प्रशस्त भूमि का निर्माण किया जिससे पारस्परिक कटुता कम हुई

तथा एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय के अत्यधिक सन्निकट आया और स्नेह सद्भावना दिन-प्रतिदिन बढती गई।

सादडी का सन्त सम्मेलन उसी सद्भावना का पुण्य प्रतीक है, जिसमें श्रद्धेय सन्तगण ने शासन-हित की प्रदीप्त भावना को लेकर जो महान् त्याग किया वह आज ही नही, इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्णाक्षरो की भाँति सदा चमकता रहेगा। जिसकी पुण्य-गाथाएँ अन्य सम्प्रदायो ने तथा राष्ट्रीय समाचार पत्रो ने मुक्त कण्ठ से गायी।

आज उन पुण्य पलो का स्मरण करते ही हृदय गद्गद हो जाता है, मन-मयूर नाच उठता है, मुख कमल खिल उठता है। क्या उत्तम भावना थी हमारे श्रद्धेय मुनिमण्डल की, वहाँ पर सघोन्नति की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होने "श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ" की स्थापना की और उसमें अपनी पूरी-पूरी सम्प्रदायो का विलीनीकरण किया। श्रमण सघ को एक ही सूत्र मे पिरोने के लिए एक सामाचारी का निर्माण किया। पर वहाँ अवकाश के क्षणो का अभाव होने से सामाचारी निर्माण का पूर्ण कार्य सम्पन्न नही हो सका। सोजत और भीनासर सम्मेलन में उस अपूर्ण सामाचारी तथा तत्कालीन समस्याओ पर विचार-विमर्श किया गया। पर अत्यन्त परिताप की बात है कि हमारा कदम जो दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर मुस्तैदी रूप से बढाना चाहिए था, वह रुक गया; रुका ही नही पर कुछ पीछे भी खिसका। जो मानस की उदार भावना सघोन्नति की ओर थी वह अपनी वैयक्तिकता या साम्प्रदायिकता को पल्लवित-पुष्पित करने की ओर लग गई। अधिकार-लिप्सा शैतान की आत की भाँति बढने लगी। साधारण-सी समस्या को लेकर आचार्यश्री एवं उपाचार्यश्री मे मतभेद हो गया और इन दोनो महापुरुषो के पारस्परिक विरुद्ध निर्णय हमारे समक्ष आये। इधर दोनों के बीच की प्रधानमन्त्री पद की कडी की लडी पूर्व ही टूट चुकी थी। अतः दोनो महापुरुषो मे मेल किस प्रकार बढाया जाय, यह एक महान् समस्या बन गई। दोनों महापुरुषो के विरोधी निर्णयो को पाकर सन्त समुदाय मे भी सनसनी होने लगी, जिससे अधिकारी मुनियो का अनुशासन जिस रूप में रहना चाहिए था, उस रूप मे न रह सका। आज स्थिति इतनी विषम बन गई है कि कही पर भी किसी भी प्रकार की व्यवस्था भग हो, श्रमण या श्रमणी साधना के कठोर मार्ग से च्युत हो जायँ तो भी कौन कहे ? किसका क्या अधिकार है ? यह निर्णय करना भी विज्ञो के लिए एक महान् प्रश्न बन गया है। आज न भूतपूर्व साम्प्रदायिक व्यवस्था ही रही है और न वर्तमान अधिकारियो का योग्य अनुशासन ही। हमारी दृष्टि से

यह आचार-शैथिल्य का प्रमुखतम कारण है। आचार्य और उपाचार्यश्री के चरणारविंदो में मतभेद निवारणार्थ अनेक बार विनम्र प्रार्थनाएँ की गयी और योजना भी प्रस्तुत की गयी पर खेद है कि उनमे से अभी तक एक भी सफल न सकी और मतभेद ने इतना उग्र रूप धारण किया कि पारस्परिक सम्बन्ध विच्छेद की स्थिति भी हमारे सामने आ गई।

हमारी यह हार्दिक भावना है कि संघ मे संगठन अक्षुण्ण बना रहे। व्यक्ति अपने हित और अपमान को महत्त्व न देकर सघ के हित को और सम्मान को महत्त्व दें। सघ महान् है, इस बात को समझकर संयम-शुद्धि के साथ संघ के कल्याणार्थ सर्वस्व न्योछावर करके श्रमणसघ के अधिनायको के एकछत्र शासन मे त्यागीवर्ग सयम साधना, तप-आराधना और मनोमन्थन कर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की त्रिवेणी मे अवगाहन करें किन्तु यह तभी सभव है जब कि संघ के सर्वोच्च अधिनायक आचार्यश्री और उपाचार्यश्री में मतभेद दूर होकर समरसता, सरसता उत्पन्न हो।

एतदर्थ ही विजय नगर के प्रांगण में श्रमणसंघ की स्थिति पर विचार विनिमय करने के लिए हम तीनो सन्त एकत्रित हुए और समस्त स्थानकवासी समाज के अन्तर्मानस की भव्य भावनाओ को लक्ष्य मे रखकर श्रद्धेय आचार्य श्री और उपाचार्यश्री के चरणारविन्दो मे निवेदनार्थ एक प्रस्ताव रखने का भी निर्णय किया; पर ता० ३०-११-६० को उदयपुर मे उपाचार्यश्री ने उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमणसंघ से अलग घोषित किया जिसे हम सघ के लिए हितकर नही मानते है। हमारी यह हार्दिक भावना है कि वे पुन. संघ-हित और जिन शासनोन्नति को लक्ष्य में रखकर इस पर गंभीरता से विचार करें और उलझी हुई समस्याओ को परस्पर विचार-विमर्श द्वारा या किसी माध्यम से हल करके सघ के श्रेय के भागी बनें।

हमारा यह दृढ मन्तव्य है कि वर्तमान मे हमारी आचार व्यवस्था किन्ही कारणो से शिथिल हो गयी है, अतः उस पर कडा नियन्त्रण आवश्यक है। क्योकि आचारनिष्ठा मे ही श्रमणसघ की प्रतिष्ठा है। हम चाहते हैं कि प्रमुख मुनिवरो के परामर्श से शिथिलाचार को आमूलचूल नष्ट करने के लिए दृढ कदम उठाया जाय। हम शिथिलाचार को हर प्रकार से दूर करने को तैयार हैं। जब तक सघ मे पारस्परिक मतभेद दूर होकर इसके लिए सुव्यवस्था न हो जाय तब तक अधिकारी मुनिवर अपने आश्रित श्रमणवर्ग की आचारवृद्धि पर पूर्ण ध्यान रखें। यदि कदाचित् किसी भी सन्त व सतीजन

की मूलाचार में कोई स्खलना सुनाई दे तो तत्काल उसकी जाँच कर शुद्धि कर दी जाय।

अन्त में हमारी ही नही अपितु संघ के सभी सदस्यो की भावना है कि श्रमणसंघ अक्षुण्ण व अखण्ड बना रहे। आचार और विचार की दृष्टि से दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर दृढता से बढता रहे और जन-जन के हृदय से यही नारा निकले कि "अखण्ड रहे यह संघ हमारा।"

प्रस्तुत वक्तव्य से समाज मे अभिनव जागृति का सचार हुआ और उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज को लगा कि मेरी अवैधानिक कार्यवाही को श्रमणसंघ के मूर्धन्य-मनीषीगण अनादर की दृष्टि से देख रहे हैं, अत: उन्होने श्रमणसंघ से व उपाचार्य पद से त्यागपत्र की घोषणा कर दी। आपश्री ने त्यागपत्र की सूचना मिलते ही विजयनगर से उपाचार्यश्री जी की सेवा मे एक शिष्ट मंडल प्रेषित करवाया। उस शिष्ट मडल ने उपाचार्यश्री से यह निवेदन किया कि आप त्यागपत्र न देवें। जो आपश्री से अवैधानिक कार्यवाही हो चुकी है उसका परिष्कार कर दिया जाय। पर उपाचार्यश्री भक्तो को प्रसन्न रखना चाहते थे अत: ऐसा न कर सके। आपश्री ने अपनी ओर से यही प्रयास किया कि श्रमणसघ अखण्ड बना रहे, एतदर्थ आपश्री उदयपुर भी पधारे और हर दृष्टि से उपाचार्यश्री को समझाने का प्रयास किया; किन्तु किन्ही कारणो से सफलता प्राप्त न हो सकी।

सन् १९६४ में अजमेर मे शिखर सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन की सफलता के लिए आपश्री ने अथक प्रयास किया और गुलाबपुरा से लेकर अजमेर तक गुरुदेवश्री ने आचार्य श्री आनन्द जी ऋषि जी महाराज के साथ रहकर अनेक गभीर समस्याओ को सुलझाने का प्रयास किया।

सन् १९६७ में बालकेश्वर बम्बई में चातुर्मास था। बम्बई में राजस्थान प्रान्तीय व्यक्तियो का कोई सगठन नही था। आपश्री की प्रेरणा से राजस्थान प्रान्तीय सघ की सस्थापना हुई, तथा अन्य अनेक साहित्यकार इस वर्षावास मे आपश्री के परिचय मे आये।

सन् १९६९ मे पूना वर्षावास के पूर्व आपश्री नासिक पधारे। उस समय मालवकेसरी सौभाग्यमलजी महाराज आपश्री के साथ थे। नासिक मे महाराष्ट्र के श्रावको का एक विराट् का आयोजन किया गया। श्रमण सघ की उन्नति किस प्रकार हो, इस पर गम्भीर रूप से विचार-चर्चाएँ की गयी।

सन् १९७० में आपश्री का चातुर्मास कान्दावाडी बम्बई में था। उस समय राजस्थान प्रान्तीय सन्त सम्मेलन का आयोजन साडेराव-मारवाड़ में किया गया। वहाँ सघ उत्कर्ष की भावना से आपश्री लम्बे-लम्बे विहार कर दो महीने मे सम्मेलन मे पधारे और सगठन का सुन्दर वातावरण निर्माण किया।

श्रमण संघ की सुदृढता के लिए ही सन् १९७९ का वर्षावास महामहिम आचार्य प्रवर आनन्द ऋषिजी म० की सेवा मे सिकन्दराबाद मे किया। सघ समुत्कर्ष के सम्बन्ध मे आचार्य प्रवर से गम्भीर चिन्तन-मनन किया गया और आचार्यश्री की जन्म जयन्ती के सुनहरे अवसर पर मधुकर मुनिजी म० को युवाचार्य पद प्रदान किया।

इस प्रकार आपश्री के जहाँ भी वर्षावास हुए, वहाँ पर धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम होते रहे। आपश्री के वर्षावास मे उत्कृष्ट तप की आराधना होती रही है और संघ मे स्नेह, सद्भावना की अभिवृद्धि होती रही। जहाँ भी आपश्री पधारे वहाँ पर सघ मे अभिनव जागृति का संचार होता रहा है। स्थान-स्थान पर जो सामाजिक कलह थे, जिसे राजस्थानी भाषा मे 'धडा' कहते हैं, ये आपश्री के उपदेशो से मिटे हैं। रायपुर—मेवाड़ मे कई वर्षों के धड़े थे, वे आपश्री के एक ही उपदेश मिट गये।

नियमित दिनचर्या

आपश्री के जीवन का सिद्धान्त है—कम बोलना और कार्य अधिक करना। आपश्री का मन्तव्य है, मानव जीवन का भव्य प्रासाद आचार-विचार के विशाल स्तम्भो पर निर्मित होता है। आपश्री को स्वाध्याय, ध्यान, जप, चिन्तन, मनन, अध्यापन, व्याख्यान, आगन्तुको से वार्तालाप, उनकी शकाओं का निरसन करना पसन्द है। साथ ही प्रतिदिन आपश्री योगासन भी करते है। हलासन, सर्वाङ्गासन, पद्मासन, बद्ध पद्मासन और शीर्षासन ये आपके प्रिय आसन हैं। अधिक औषधि सेवन करने को आप उचित नही मानते हैं। यथा-सम्भव आप औषधि नही लेते और भोजन मे कम खाना और कम पदार्थ लेना आपको पसन्द है। आपका मानना है कि भोजन की मात्रा जितनी कम होगी उतनी ही साधना करने मे स्फूर्ति होगी। अधिक खाने से आलस्य और प्रमाद की अधिकता होगी। साधारणतया आप रात्रि को दो बजे उठते है। सबसे पहला कार्य है ध्यान और जप की साधना करना, उसके पश्चात् आपश्री आत्मालोचन करते है जिसे जैन भाषा मे 'प्रतिक्रमण' कहते हैं। सूर्योदय होने

के पश्चात् आप गाँव से बाहर शौच के लिए जाते है जिसमें श्रम, टहलना व घूमना सहज रूप से हो जाता है। उसके बाद स्वाध्याय करते हैं फिर एक घण्टे तक प्रवचन करते हैं। प्रवचन के बाद एक घण्टे तक जप व ध्यान करते हैं और फिर आहार ग्रहण करते हैं। आहार में दो बातों का विशेष लक्ष्य रखते है—सख्या और मात्रा मे कम वस्तुएँ लेने का। आहार के पश्चात् कुछ समय तक हल्का विश्राम करते है। उस समय ऐसे साहित्य का अवलोकन करते है जो विश्राम मे भार स्वरूप न हो। उसके बाद साहित्य का लेखन तथा अध्यापन और आगन्तुको से विचार-चर्चा। सायकाल सूर्यास्त के पश्चात् पुनः आत्मालोचन और आठ से लेकर नौ तक जप व ध्यान और फिर कुछ समय तक विचार-चर्चा के बाद प्रायः दो बजे तक शयन करते है।

इस प्रकार "युक्ताहार विहारस्य योगो भवति दुःखहा" के अनुसार आपकी जीवन-चर्या सहज, नियमित और बहुत ही सरल है। इसीलिए आप प्राय स्वस्थ रहते है और कभी बीमारी आती है तो उसे भी ध्यान, आसन, प्राणायाम द्वारा शीघ्र ही दूर कर देते हैं।

□□

६ गुरुदेव की साहित्यधारा

साहित्य और कला मानव-जीवन के लिए वरदान है। साहित्य और कला का सम्बन्ध आज से नही, आदिकाल से रहा है। जो साहित्यकार होगा, वह अवश्य कलाकार होगा। दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। भारत के महान कवि भर्तृहरि ने "साहित्य—सगीत-कला से विहीन व्यक्ति को साक्षात् पशु कहा है।"

यूनान के महान् दार्शनिक प्लेटो ने 'आदर्श राज्य' नामक एक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ की रचना की, उसमे कवि का बहिष्कार किया गया था। क्योंकि कवि समाज को उच्च आदर्शों की प्रेरणा प्रदान न कर भावनाओ के साथ खिलवाड करता है और वह असयम एव अनैतिकता का मिथ्या प्रचार करता है। पर उसके शिष्य अरस्तू ने प्लेटो की भ्रांत धारणा का खण्डन करते हुए कवि का प्रभाव और काव्य मे होने वाली मानसिक प्रसन्नता आदि पर चिन्तन किया है। गीर्वाण-गिरा के यशस्वी कवियो ने काव्य से प्राप्त होने वाले रस या आनन्द को "ब्रह्मानन्द सहोदर" कहा है। आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रयोजनो पर चिन्तन करते हुए उससे प्राप्त होने वाले यश, कीर्ति, व्यावहारिक ज्ञान, अमगल का विनाश, आनन्द और उपदेश पर विस्तार से प्रकाश डाला है। यदि हम काव्य की श्रेष्ठता और ज्येष्ठता का प्रतिमान इन्ही तत्त्वो को मान लें तो सद्गुरुदेवश्री की काव्य रचनाओ मे इन तत्त्वो की सहज सस्थिति है। सद्गुरुदेवश्री की कविताओ का लक्ष्य किसी अमूर्त सौन्दर्य लोक की सस्थापना करना नही है, और न उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जैसे अलकारो से कविताकामिनी को सजाना ही है, अपितु उनका लक्ष्य जन-जन के अन्तर्मानस मे त्याग और वैराग्य की मगलमय भावना उत्पन्न करना है। सत्काव्य की यही विशेषता रही है। वह मानव को शब्दो के जाल मे उलझाता नही। किन्तु सीधे हृदय को प्रभावित करता है। उनमें लोकमगल के विधायक तत्व होते हैं। छद्म आधु-

निकता का कृत्रिम प्रयास नही, अपितु शाश्वत सत्यो का आख्यान और मानवीय सवेदना की गहरी पहचान होती है।

कहा जाता है—"कवि बनते नही, जन्मते हैं।" इसी कारण आपश्री के काव्य में सहजता, मार्मिकता, हृदय की गहराई एवं भावों की श्रेष्ठता मिलती है, निश्छल उपदेश-प्रवणता के भी दर्शन यत्र-तत्र होते हैं।

सद्गुरुदेवश्री के साहित्य मे कविता की गगा, कथा की जमुना और निबन्ध की सरस्वती का सुन्दर संगम हुआ है। उनकी कृतियो में वाल्मीकि का सौन्दर्य है, कालिदास की प्रेषणीयता है, भवभूति की करुणा है, तुलसीदास का प्रवाह है, सूरदास की मधुरता है, दिनकर की वीरता है और है गुप्तजी की सरलता व सुबोधता।

काव्य और गीति साहित्य

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य एक मनस्वी और यशस्वी साहित्यकार हैं। लिखना-पढना, कविताएँ करना, प्रवचन करना, धर्म और संस्कृति पर चर्चाएँ करना आपको प्रिय है। प्रारम्भ से ही आप साहित्य का सृजन करते रहे है। आपश्री का साहित्य के क्षेत्र में कविता के द्वारा प्रवेश हुआ है। सर्वप्रथम आपने गीत, कविता और काव्य लिखे। आपश्री सफल साधक, गम्भीर विचारक और मानवता के सन्देशवाहक है। आपश्री अपने युग की सम्पूर्ण प्रवृत्ति के एवं सत्ता के द्रष्टा एव स्रष्टा हैं। आपका साहित्य मानवता की भावना से ओत-प्रोत है। अपने विचारो को स्पष्ट रूप से जनचेतना के समक्ष रखने मे आपश्री सक्षम हैं। आपके साहित्य में केवल जड शब्दो का समूह नही है; किन्तु उसमे बोलता हुआ जीवन है। आपके गीत धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक भावों से परिपूर्ण हैं। उनमे आध्यात्मिकता व सामाजिकता का आलाप है, अपलाप नही। आपश्री के गीतो का सकलन 'पुष्कर-प्रभा' 'संगीत-सुधा' 'भक्ति के स्वर', 'सायर के मोती', 'अमर पुष्पांजलि' आदि नामो से प्रकाशित हुए हैं। इन वर्षों मे भी आपश्री ने शताधिक भजनो का निर्माण समय-समय पर किया है। पर वे सभी अप्रकाशित है।

मानव हृदय की वाणी को झकृत करने मे संगीत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। एतदर्थ ही मध्यकालीन सन्तो ने अपनी धार्मिक वाणी को विविध राग-रागिनियो से सम्पृक्तकर मानवीय सवेदना को जागृत करने का एक सफल प्रयास किया है। कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, मीरा,

आनन्दघन, यशोविजय, समयसुन्दर, प्रभृति सन्तो ने अपनी-अपनी भक्ति भावनाओ की श्रद्धांजलि संगीत के माध्यम से प्रस्तुत की है। भाषा की सरलता, शैली की सहजता, व लोकप्रिय धुनो पर लिखे गये गीत प्रभावशाली हैं। कवि का ध्यान केवल वैयक्तिक साधना तक ही सीमित नही है, किन्तु विभिन्न राष्ट्रीय समस्याओ के प्रति भी वह जागरूक है। आपश्री के गीतो मे फिल्मी गीतो की तरह बिजली की तडप, सर्च लाइट की चकाचौंध और सर्कस की कलाबाजी नही है, किन्तु जो कुछ भी है, वह सहज है, सरल है और सौम्य है। इन गीतो का लक्ष्य जन-जन के मन को स्वस्थ बनाना और भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर मोडना है। साथ ही जीवनोत्थान की मगलमय प्रेरणा प्रदान करना है।

आपके गीत स्तुतिपरक, उपदेशपरक और प्रकीर्णक है। स्तुतिपरक रचनाओ मे कवि ने प्रसिद्ध आराध्यदेव तीर्थंकर, विहरमान, गणधर और सतियो की स्तुति की है। स्तुतिपरक रचनाओ मे कवि की शैली एक ही रही है। कवि को ऐश्वर्य, धन एवं वृद्धि की चाह नही है, वह केवल भवसागर से पार होना चाहता है। सन्त होने के कारण से कविता साध्य नही किन्तु साधन है। उपदेशपरक रचनाओ मे कवि ने हेय बातो को छोडने और उपादेय बातो को ग्रहण करने को उत्प्रेरित किया है। और प्रकीर्णक रचनाएँ वे हैं, जो उक्त दोनो वर्गों मे नही आती है। समय-समय पर श्रोताओ को उद्‌बोधन देने के लिए वे रचनाएँ लिखी गयी हैं।

ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र को आधार बनाकर काव्य लिखने की प्रवृत्ति अतीत काल से रही है। जैन साहित्य मे चरित्र काव्यो की लम्बी परम्परा हैं।

चरित्र के माध्यम से जीवन निर्माण की पवित्र प्रेरणा दी जाती रही है। गुरुदेवश्री ने क्षमावीर सम्राट उदायी, द्रौपदी की आदर्श क्षमा, सत्यान्वेषी आचार्य सय्यम्भव, बालर्षि मणक, महामात्य शकडाल, श्रुतकेवली आचार्यश्री भद्रबाहु, महायोगी स्थूलभद्र, कोशा वेश्या का कला-कौशल, यक्षा साध्वी, चाणक्य और चन्द्रगुप्त, बुढिया की सीख, अवन्ति सुकुमाल का त्याग, आर्य मंगू, महान् प्रभावक आर्य वज्रस्वामी, वज्रसेन की भविष्यवाणी, आचार्य आर्यरक्षित, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, युगप्रधानाचार्य नागार्जुन, देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण, आचार्य हरिभद्र, आचार्य मानतुंग, सम्राट् सम्प्रति, श्री रत्नाकर सूरि, सूरि सम्राट् श्री हीरविजयजी, कवि धनपाल की सेवा, कुमार-

पाल की घोषणा, जैन श्राविका का साहस, भोज का भाग्य, देशप्रेमी भामाशाह, दया धर्म की विजय, अशौच-भावना, सबसे बडा कौन ? वृद्धा की सामायिक, सत्यवादी मुहर्णसिंह, धृतराष्ट्र की दुष्टता, भौतिक सुख मे सार नही, काल का असर, आचार्य अमरसिंहजी महाराज, आचार्य श्रीतुलसीदास महाराज, आचार्य श्री सुजानमलजी महाराज, आचार्य श्री जीतमलजी महाराज, आचार्य, श्रीज्ञानमलजी महाराज, आचार्य पूनमचन्दजी महाराज, अध्यात्म योगी जेठमलजी महाराज, महास्थविर श्रीताराचन्दजी महाराज, आदि अनेक ऐतिहासिक महापुरुषों पर आपश्री ने अनेक खण्ड काव्य लिखे है।

सुरसुन्दरी चरित्र, रत्नदत्त चरित्र, मानतुंग मानवती चरित्र, गुणाकर गुणावली चरित्र, पुण्यसार चरित्र, सुखराज चरित्र, अमरसेन वीरसेन चरित्र, वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार चरित्र, पाप विपाक (बाल हत्यारा), पापो का फल (भला और बुरा), कर्म विपाक, स्वार्थ का खेल, महामन्त्री उदायन, धनतेरस, दुःख का कारण, हिन्दुओं की गौरव गरिमा, सुशीला की सुशिक्षा, बादशाह को न्यायप्रियता, कृत कारित का फल, एक वचन का प्रभाव, महामन्त्र नवकार, परोपकार वृत्ति, मृत्यु का भय, सर्वज्ञप्रभा, पारस का बाप, कर्मों का कर्जा, कसाई केवली, त्याग की महिमा, गिरधर की मोहलीला, निस्पृह सन्त गोरखनाथ, केशरिया मोदक, गोपीचन्द राजा, मम्मण सेठ, नरभव की महिमा, चमडी की परख, कुमारपाल, अमर जड़ी, शीतला-पूजन, मातृ-सेवा, सफलता का मूल : भाग्य, महात्मा गाधो, दाडिम सेठ, अनुकम्पा की महिमा, लक्ष्मीधर सेठ, जीवरक्षा का महत्त्व, समाट् सम्प्रति, भोज का का भाग्य अशौच भावना, पूनिया श्रावक, वचन का महत्त्व, दया की भावना, नियम की दृढ़ता, दान मे अभिमान, गांगेय से भीष्म, स्त्रो का सेवा भाव, गुरुभक्त एकलव्य, छल का फल, दान का दोष, कीचक का नाश, सबसे बडा दुःख, क्रोध की आग, न्याय की बात, कर्ण का दान, एक सेर सतुवा, परोपकारी भीम, भाई का भाई, योग्यता बढाइये, जीवरक्षा की शिक्षा, हाय गरीबी, द्रौपदी की क्षमा, अद्‌भुत दान, अर्जुन का आदर्श, धर्म की अडिगता, सच्ची सलाह, वशीकरण का रहस्य, समय बड़ा बलवान, अतिथि देवोभव, ऊँचा मनोबल, विजय का मार्ग, एक चुनाव, छोटी सी भूल, नियम का प्रभाव, गुण की दृष्टि, एक अनुपम सहयोग, दासी या स्वामिनी, असली तीर्थ यात्रा, प्राणघाती की प्राणरक्षा, जाजलि और तुलाधार, अति लोभ : एक दुर्दशा, छह गुरु, भाग्य की बात, आत्मा को देखो, गलत निर्णय, चोरी का दण्ड, विनय की विशेषता आदि शताधिक चरित्र और खण्ड काव्य आपश्री ने लिखे है।

उनमे से कुछ चरित्र, ज्योतिर्धर जैनाचार्य, विमल विभूतियाँ, वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार, महाभारत के प्रेरणा-प्रदीप आदि कुछ प्रकाशित हुए हैं और बहुत से अप्रकाशित है।

इतिहास मानव जाति की सबसे बडी अनमोल सम्पदा है, अतीत की महत्त्वपूर्ण घटनाओ और चली आ रही परम्परागत धारणाओ का यथार्थ चित्रण है। भारतीय धर्म दर्शन और समाज की ऐतिहासिक परम्परा अत्यधिक समृद्ध रही है। यह एक ज्वलन्त सत्य है कि व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को, व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अत्यधिक महत्त्व देने के कारण भारतीय परम्परा मे इतिहास का जिस प्रकार लेखन अपेक्षित था, उस रूप मे न हो सका। किन्तु इतिहास लेखन के विविध स्रोत किसी न किसी रूप मे सुरक्षित अवश्य रहे है। महाकाल के झझावात मे भी वे स्रोत लुप्त नही हुए है। महाभारत के सुप्रसिद्ध लेखक वेदव्यास ने लिखा है—'इतिहास की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन आता है और जाता है। धन के नष्ट होने पर कोई नष्ट नही होता, पर इतिहास के विनष्ट होने पर उसका विनाश निश्चित है।'[1]

एक अन्य विचारक ने लिखा है—यदि किसी जाति, समाज या राष्ट्र को नष्ट करना हो, उसे अपनी गौरव गरिमा को नष्ट करके दुर्भाग्य के दुर्दिन देखने के लिए सर्वनाश के महागर्त मे गिराना हो तो अन्य कुछ करने की आवश्यकता नही, बस एक ही कार्य किया जाय कि उसका इतिहास उससे छीन लिया जाय। पूर्वजो के सस्मरणो पर ब्रेक लगा दिया जाय। और इतिहास के स्वर्ण-पृष्ठ जिसमे उसके पूर्वजो की गौरव गाथाएँ अकित है उनको विपरीत रूप मे उपस्थित किया जाय जिससे वह देश, समाज व राष्ट्र या धर्म पतन की ओर सहज ही अग्रसर हो जायेगा।

जब कोई देश, राष्ट्र समाज या धर्म हीन व दीन भावनाओ से ग्रसित हो जाता है, अपने महत्त्व को विस्मृत हो जाता है तो उसे प्रतिपल प्रशिक्षण यही सुनाया जाता है कि तू कुछ नही है। तेरे पूर्वजो मे किञ्चित् मात्र भी सामर्थ्य नही था, उन्होने अपने जीवन मे कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य नही किया। तो अवश्य ही उस देश, राष्ट्र, जाति, समाज और धर्म की परम्पराएँ

---

१ वृत्त यत्नेन सरक्षेत् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्तत क्षीण. वृत्ततस्तु हतो हत ॥ —महाभारत (वेदव्यास)

छिन्न- होने लगेंगी। सके रक्त की उष्मा ठण्डी पड़ जाने से वह उन्नति के की ओर अग्रसर होगा। मनोविज्ञान का भी यह नियम है कि जो व्यक्ति हीन भावनाओ के कीटाणुओ से आक्रान्त हो जाता है, वह क्षय रोगी, की तरह अन्दर ही अन्दर खोखला बन जाता है। यदि उसे इस रोग से मुक्त होना है तो पूर्वजो के पवित्र चरित्र से प्रेरणाएँ ग्रहण करनी होगी और उसे समझना होगा उन पराक्रमी पूर्वजो का ऊर्जस्वल रक्त अब भी मेरी धमनियो मे प्रवाहित हो रहा है। महात्मा ईसा ने अपने उपदेश में कहा—"तुम यह मत सोचो कि संसार में हमारा कोई अस्तित्व नही है। तुम इस सृष्टि के नमक हो। संसार का स्वाद बदलने की क्षमता तुम में है।" बेकन का मन्तव्य है कि इतिहास पढने से मानव बुद्धिमान बनता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने लिखा है कि इतिहास स्वदेशाभिमान सिखाने का सबसे बडा साधन है। गिब्बन का यह लिखना सर्वथा अनुचित है कि इतिहास मानव के अपराध, मूर्खताओ और दुर्भाग्यो के रजिस्टर के अतिरिक्त और कुछ नही। क्योकि इतिहास मानव-जीवन को उन्नत और समुन्नत बनाने का महत्त्वपूर्ण साधन भी है। वह लड़खड़ाती जिन्दगियो में अभिनव जीवन का संचार करता है, भूले भटके जीवन का पथ-प्रदर्शन करता है। अपने अतीत की गौरव गाथाओं का स्मरण कर उसमें अभिनव शौर्य और प्रबल पराक्रम का सचार होता है। वह विश्व को अपने प्रदीप्त तेज से आलोकित करता है। वस्तुतः इतिहास धर्म और समाज को जीवित रखने वाली संजीवनी बूटी है। इतिहास क्या है? इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए पाश्चात्य विचारक कार्लाइल ने लिखा है—"जीवनियाँ ही सच्चा इतिहास है।" उन जीवनियो में महापुरुषो की अमर गाथाएँ उट्टंकित होती हैं, जो जन-जन के अन्तर्मानस में संयम-साधना, तप-आराधना और मनोमंथन की प्रबल प्रेरणाएँ प्रदान करती है, साथ ही कर्त्तव्य मार्ग में जूझने के लिए सन्देश भी देती है।

जैन इतिहास की उन विमल विभूतियो के जीवन की वे पावन गाथाएँ चित्रित की है जिनमें प्रेरणा हैं, भावना है, और साधना है। सम्राट उदाई और द्रौपदी के चरित्र में क्षमा की महता का प्रतिपादन किया गया हैं। क्षमा कायरो का यही अपितु वीरो का भूषण है। क्षमा वही व्यक्ति कर सकता है जिसके जीवन में तेज ओज है।

'क्षमा धर्म की साधना करते व्यक्ति समर्थ।

शक्तिहीन रखते क्षमा, उसका क्या है अर्थ?

मार सके मारे नहीं, उसका नाम मरद्द ।
जिसकी हो असमर्थता, उसकी कृतियाँ रद्द ॥
क्षमा बड़े ही कर सकते हैं, क्षुद्र क्षमा कव कर पाते ।
निर्बलता से पिसे हुए नर, बड़-बड़ करते मर जाते ॥

कवि की शब्द चेतना इतनी प्रबुद्ध तथा सशक्त है कि नीति, धर्म, दर्शन की गुरु गम्भीर ग्रन्थियाँ भी बडी स्पष्ट व सुबोध भाषा मे प्रस्तुत करने में कमाल दिखाती है। दौपदी के क्षमा प्रसंग पर कवि ने लिखा है—

हिंसा का प्रतिकार न हिंसा, हिंसा का प्रतिकार अहिंसा ?
प्रेम शान्ति सुख-धाम ...
हिंसक को क्यो मारा जाये, उसका हृदय सुधारा जाये,
सुना सत्य पैगाम........
आग, आग से नहीं बुझाओ, जल बनने का मार्ग सुझाओ,
पाओ सुख आराम .. ..

गुरुदेवश्री की कविता को पढने मे, समझने मे, किसी टीका या कुन्जी की आवश्यकता नही होती। कविता इतनी सरल व भावोद्‌बोधिनी है कि प्रबुद्ध पाठक उसे सहज रूप से समझता चला जाता है। उनका काव्य केवल मनोरंजन के लिए या काव्यानन्द के लिए नही अपितु आदर्श जीवन दर्शन के लिए है। उसमे जीवन सगीत की सरस लय है। उनकी कविता अलकारो से लदी हुई नव दुल्हिन की तरह बन-ठनकर प्रस्तुत नही होती अपितु सीधी-सरल सात्विक जीवन-सगिनी की तरह है। साथ ही भाषा चुस्त, अनुभूतियो से परिपूर्ण और चुटीली है। महादानी कर्ण के दान प्रसग पर—

धन हो चाहे पास मे, दिया न जाता दान।
देने वाला ही यहाँ माना गया महान ॥१॥

कर्ण द्वारा कवच-कुण्डल का कठोर दान करने पर—

मलिनता मुख पर न झलकी, देख छल होता हुआ।
दान वह भी दान क्या, दिल दे अगर रोता हुआ ॥२॥

कवि-उक्ति की सहजता व सचाई कितनी मार्मिक है!

इसी प्रकार भीम के परोपकार प्रसंग पर बक-असुर का यह कथन काव्य सौन्दर्य की कसौटी पर कितना खरा उतरता है—

अरे दुष्ट डरता नहीं, क्यो खाता यह माल ?
माल जिसे तू मानता, माल नहीं यह काल ।।

भाई के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कवि कितनी सहजता में कितनी गम्भीर बात कह जाता है—

भारत की यह नीति रही है, भाई अपना भाई है ।
कभी-कभी भाई-भाई मे होती क्या न लड़ाई है ।।
भाई कहाँ पीठ का मिलता, मिलता कचन गांठ का ।
भाई से बढ़कर क्या होती, मीठी यहाँ मिठाई है ?

भाई-भाई के मधुर व प्रगाढ सम्बन्धो की अभिव्यक्ति कितनी सरल व हृदयग्राही है !

वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार चरित्र मे विविध घटनाओं और भावों को व्यक्त करते हुए कवि ने अत्यन्त सुकुमार पदावली का प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप मे देखिए—

परम प्रभावक प्रभव के, परम पूज्य गुरु आप ।
जम्बूजी की जीवनी, पूर्णतया निष्पाप ।।

\+ + +

बोले बिना, बिना डोले ही और बिना खोले ही आँख ।
अनुमति दे दी है दीक्षा की, भोले पति के सम्मुख झाँख ।।
देता दान मान भी देता, होने देता मान नहीं ।
मान दान का होना क्या है दाता का अपमान नहीं ।।

कवि ने मानव की भावनाओ को प्राञ्जल करने हेतु यत्र-तत्र नैतिक जीवन का उपदेश भी प्रदान किया है । जैसे—

स्वास्थ्य विरोधी द्रव्य मिलाकर, द्रव्य कमाने वाले जन ।
धन का सपना नहीं देखते, केवल खुश कर लेते मन ।।

\+ + +

शक्ति सगठन में होती है, इसीलिए सब रहते एक ।
सभी एक हो सभी नेक हो, इसमे ही हैं सिद्धि अनेक ।।

कवि ने निराशावाद का खण्डन करते हुए प्रगति के पथ पर बढ़ने की प्रेरणा दी। उसने कहा—

चलने वाले राही ही तो, रास्ता भूला करते हैं।
डाली टूटा करती उनकी जो नर झेला करते हैं॥
गिरते जो घोड़े चढ़ते वे, नहीं पिसारी गिर सकती।
उपल बीनने वाली बुढ़िया, क्या सेना से घिर सकती॥

आधुनिक शिक्षा-पद्धति पर कवि ने व्यंग कसते हुए कहा—जो शिक्षा बालको मे विनय की भावना न भरती हो, विवेक को उद्बुद्ध न करती हो, जो मानव को मानव के साथ प्रेमपूर्वक रहना न सिखाती हो, जिसे अपने स्वय का ज्ञान न हो, वह क्या शिक्षा है ? उस शिक्षा से तो भिक्षा मांगना ही अच्छा है। कवि के शब्दो मे ही—

सदुपयोग शिक्षा का करना, सौ शिक्षा की शिक्षा एक।
वह शिक्षा क्या शिक्षा है जो, सिखला पाती नहीं विवेक॥
पढ़कर भी इतिहास आप मे, जगा आत्म-विश्वास नहीं।
उस दीपक को दीप कहे क्या, जिसके पास प्रकाश नहीं॥

जिज्ञासा ही दर्शन की जननी है। विना जिज्ञासा के व्यक्ति सत्य तथ्य को प्राप्त नही कर सकता। धर्म का सही मर्म वही व्यक्ति समझ सकता है जिसके अन्तर्मानस मे प्रवल जिज्ञासा है। कवि ने सत्य ही कहा है—

धर्म-धर्म कहते सभी, धर्म-धर्म मे फर्क।
मर्म धर्म का समझ लो, करके तर्क-वितर्क॥

जीवन मे कभी उन्नति होती है और कभी अवनति होती है। वह एक झूले की तरह है जो कभी ऊपर तो कभी नीचे जाता-आता रहता है। महामात्य शकडाल और वररुचि के जीवन प्रसग को चित्रित करते हुए कवि ने लिखा है—

क्या से क्या होता घटित, अघटित सारा कार्य।
इसीलिए अध्यात्म पर, वल देते सव आर्य॥
वादल प्रतिपल मे यथा, वदला करते रग।
रग वदलता देखिए, अगी का निज अग॥

आहार जीवन के लिए वहुत ही आवश्यक है। विना आहार के न ज्ञान हो सकता है, न ध्यान हो सकता है और न प्रचार ही हो सकता है। कवि ने इसी तथ्य को अपनी भाषा मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

श्रम स्वाध्याय नहीं हो पाते, मिलता जब आहार नहीं।
जब आहार नहीं मिलता तब, होता पाद-विहार नहीं ॥

होता पाद-विहार नहीं जब, होता धर्म प्रचार नहीं।
होता धर्म प्रचार नहीं तब, रहता एक विचार नहीं ॥

रहता एक विचार नहीं तब, आस्थाएँ मर जाती हैं।
शक्ति बिखर जाती संघो की, प्रभावना गिर जाती है ॥

प्रभावक व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए कवि ने जो शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है वह बडा अद्भुत है—

उन्नत मस्तक दीर्घ भुजाएं, भव्य ललाट हृदय बलवान।
क्षात्र तेज के साथ रूप ने बना रखा था अपना स्थान ॥
चौड़ी छाती स्कन्ध सुदृढ़ थे, नेत्र विशाल सुरग विशेष।
रंग गेहुँआ होता ही है आकर्षण का केन्द्र हमेश ॥

भारतीय सस्कृति मे अतिथि को देवस्वरूप माना है। 'अतिथि देवो भव' यहाँ का मूल स्वर है। जब अतिथि घर पर आये, तब गृह-मालिक का कर्तव्य है कि वह उसका स्वागत करे। देखिए, कवि ने इसी बात को इस रूप में प्रस्तुत किया है—

रोटी और दाल से बढ़कर, भोजन क्या हो सकता है?
आया हुआ अतिथि अपने घर, क्या भूखा सो सकता है?
आश्रय दो, दो भोजन-पानी, अपनापन दो, दो सत्कार।
आते अतिथि न अर्थ माँगने, नहीं व्यर्थ का ढोओ भार ॥

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की संक्षेप में कवि ने बहुत सुन्दर परिभाषा की है। कवि लिखता है—

द्रव्य त्याग से है बड़ा, देह त्याग का राग।
होता ही है जीव का, देहाश्रित अनुराग ॥
यह मैं, मैं यह, इस तरह लेता है मन मान।
यही बड़ा मिथ्यात्व है, यही बड़ा अज्ञान ॥
देह भिन्न, मैं भिन्न हूं, जब लेता मन मान।
सम्यग्दर्शन है यही, है यह सम्यग्ज्ञान ॥

साधक को उद्बोधन देते हुए कवि ने कहा कि जिनशासन के लिए तुम्हें न्योछावर हो जाना चाहिए। जब तक तुम जिनशासन के प्रति सर्वा-

त्मना समर्पित नही होगे, तब तक जिनशासन की सच्ची समुन्नति नही हो सकेगी—

जिनशासन के लिए आप भी, जीवन दान करो अपना ।
अगर कभी देखा हो जो कुछ, वह तो सही करो सपना ॥
सुत दो कन्याएँ दो, धन दो और समय दो, सेवा दो ।
श्री जिनशासन अपना शासन, समझ प्रेम का मेवा लो ॥

दान धर्म का प्रवेश द्वार है। दान की महत्ता पर चिन्तन करते हुए कवि ने लिखा है कि दुर्भिक्ष के समय उदारता के साथ दान दो। उस समय पात्रापात्र का विचार न करो। क्योकि जो व्यथित है उसे देना ही तुम्हारा संलक्ष्य होना चाहिए। देखिए—

पात्रापात्र विचार को यहाँ नहीं अवकाश ।
देता है आदित्य भी सबको स्वीय प्रकाश ॥
जो प्राणो का पात्र है, वह दानों का पात्र ।
जो पढ़ने मे तेज है, वही श्रेष्ठतम छात्र ॥

साधना की दृष्टि से साधक को निरन्तर साधना करनी चाहिए। उसे किसी प्रकार के चमत्कार की आकांक्षा नही करनी चाहिए और न चमत्कार प्रदर्शन ही करना चाहिए। कवि चमत्कार प्रदर्शन का निषेध करता हुआ कहता है कि—

चमत्कार है ब्रह्मचर्य तप, चमत्कार है व्रत-संयम ।
चमत्कार दिखलाने वाला, चमत्कार को करता कम ॥
चमत्कार दिख जाया करता, दिखलाने का करो न मन ।
विद्युत चमत्कार दिखलाकर, शीघ्र छुपाती अपना तन ॥

दुष्ट व्यक्ति चाहे कैसा भी संयोग मिले पर वह अपनी वृत्ति को नही छोड़ता। वह शिष्ट के साथ भी दुष्ट प्रवृत्ति करने में नही चूकता। कवि ने दुष्ट मानव की प्रकृति का चित्रण करते हुए लिखा है—

नहीं छोड़ता दुष्ट दुष्टता, उसका ऐसा बना स्वभाव ।
गिरिशिखरों पर सड़कों में ज्यों, पाये जाते बड़े घुमाव ॥
मोर मधुर बोला करता है, अहि को किन्तु निगल जाता ।
भले नली मे डालो पर क्या, श्वान पुच्छ का बल जाता ॥
तलो तेल में भलो महल में, गन्ध प्याज की कब जाती ।
मार्जारी के मन में मूषक गण पर क्या नहीं आती ॥

काव्यों के भाषा सौष्ठव तथा उक्ति वैचित्र्य का एक उदाहरण देखिए। दिल्ली का वर्णन करते हुए आपश्री ने लिखा है—

कालिन्दी के काले जल ने, किया नहीं किसको काला।
क्यों न निराला होगा उसका सुष्ठु स्वरूप बडा आला॥
केवल यमुना का जल काला, कालापन पुर में न कहीं।
अथवा कालापन केशों में, कालापन उर में न कहीं॥

सरसता, रमणीयता, शब्द और अर्थ में गाम्भीर्य—ये काव्य के प्रमुख गुण हैं। जो काव्य रसयुक्त हो और दोषमुक्त हो वही रमणीय है। काव्य में रमणीयता और सुन्दरता लाने हेतु प्राचीन काल में अलंकारो का प्रयोग विशेष रूप से होता रहा है। गुरुदेवश्री के काव्य में भी अनुप्रास, उपमा, रूपक, उदाहरण प्रभृति अलंकारो का प्रयोग सहज रूप मे हुआ है। जैसे देखिए—

सत्पुरुषों के स्पर्श से होती धरा पवित्र।
बमता बायु सुगन्धमय पाकर उत्तम इत्र॥

(उपमा)

\+ \+ \+ \+

फूल सूँघने फल खाने को, गाने को आकाश मिला।
कौन पूछता पोस्ट कौन-सा और कौन-सा लिखें जिला॥

(उदाहरण)

× × × ×

बोले बिना, बिना बोले ही और बिना खोले ही आँख।

(अनुप्रास)

जम्बू की गति में जब देखी अजब गजब वाली मस्ती।
राजहंस ऐरावत डर कर, छोड़ गये शहरी बस्ती॥

(रूपक)

आर्य वज्रस्वामी के पवित्र चरित्र मे दीक्षा का वर्णन करते हुए जो अनुप्रास सहज रूप से प्रयुक्त हुए हैं, वे प्रेक्षणीय हैं—

दीक्षा शिक्षा गुरु से पाई, भिक्षा पाई लोगों से।
पूर्ण तितिक्षा पाई मुनि ने, निज अनुभूत प्रयोगों से॥

युवक अमरसिंह ने संसार की स्थिति का चित्रण करते हुए अपनी मातेश्वरी से कहा कि संसार मे प्रत्येक जीव के साथ अनन्त वार सम्वन्ध हो चुका है, फिर बिछुडने और मिलने पर शोक और आनन्द किस बात का ? कवि ने इसी को अपने शब्दो मे व्यक्त किया है—

ऐसा जीव नहीं है जग में, जिससे जुड़ा न हो सम्वन्ध ।
मिलने और बिछुडने पर फिर, कैसा शोक तथा आनन्द ॥

जैन सन्त की परिभाषा आपने इस प्रकार दी है—

महाव्रतो की कठिन साधना, नव विधि से जीवन पर्यन्त ।
करने वाले महापुरुष को, माना जाता जैनी सन्त ॥

×　　　　×　　　　×　　　　×

समता सहित रहित ममता से, विहरण करता भूतल पर ।
नहीं किसी के बल पर जीना, जीना है अपने वल पर ॥

आचार्य अमरसिंह जी का वर्णन करते हुए अनुप्रासो की उत्तम छटा दर्शनीय है—

उत्तम आकृति उत्तम व्याकृति, उत्तम व्यवहृति मति उत्तम ।
उत्तम उपकृति धृति श्रुति उत्तम, उत्तम व्यापृति गति उत्तम ॥

अहिंसा का विश्लेषण करते हुए कवि ने बहुत ही सुन्दर भाव शब्दो की लड़ियो की कड़ियो मे पिरोये है—

तत्त्व अहिंसा से सात्त्विकता, सात्त्विकता मे सत्त्व निवास ।
सत्त्व सहित जीवन का होता, बहुत महत्त्व विशेष विकास ॥

स्वतन्त्रता सम्पत्ति सत्त्व में, अतः अहिंसा धर्म प्रधान ।
धर्म अहिंसा से सहमत हैं, आगम वेद पुरान कुरान ॥

सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य व्रत, एक अहिंसा के हैं अग ।
विना अहिंसा फीका लगता, धर्म-रु उपदेशो का रग ॥

जैन श्रमणो की वेश-भूषा मे मुखवस्त्रिका का प्रमुख स्थान है । जैन श्रमण मुख-वस्त्रिका क्यो धारण करते हैं ? कवि ने सरल और सरस शब्दो में वताया है—

मुख्य चिन्ह मुखवस्त्रिका, जैन सन्त का जान।
बचा रही हैं प्रेम से, वायुकाय के प्रान॥
वह गिरने देती नहीं, सन्मुख स्थित पर थूक।
कहती अपने वचन से, कभी न जाना चूक॥

× × × ×

"खुले मुँह बोले नहीं", यह सयम का मूल।
बांधे जो मुखवस्त्रिका, सम्भव क्यो हो भूल॥

बाल्य जीवन का वर्णन करते हुए कवि ने उत्तम माता की सन्तान उत्तम होती है—यह प्रतिपादन किया है। उसके कुछ पद्य देखिए—

उत्तम शिशुओं की माता भी, होती उत्तम गुण वाली।
उत्तम फूल उगाने वाली, उत्तम होती है डाली॥
उत्तम रंग अंग भी उत्तम, उत्तम सग मिला सारा।
उत्तमता को जाना जाता, उत्तम लक्षण के द्वारा॥

ग्राम्य सस्कृति का चित्रण करते हुए आपश्री नें लिखा है—

गाँवो में है धर्मलाज शुभ, गाँवो मे है नैतिकता।
बसी वास्तविकता गांवो में, शहरो में है कृत्रिमता॥

धर्म के मर्म पर प्रकाश डालते हुए कवि ने कहा है—

दूध-दूध होते नहीं, सारे एक समान।
अर्क दुग्ध के पान से पुष्ट न बनते प्रान॥
धर्म-धर्म कहते सभी धर्म धर्म में फर्क।
मर्म धर्म का समझ लो करके तर्क-वितर्क॥

आधुनिक मानव-समाज नैराश्य, कुण्ठा, सन्त्रास, विघटन, आदि भयंकर व्याधियो से पीडित है। आपश्री की दृष्टि से उन व्याधियो से मुक्त होने के लिए तप, त्याग, वैराग्य—ये साधन सजीवनी बूटी के समान है। यदि मानव इन सद्गुणो की उपासना करे तो उसका जीवन आशा व उल्लास से भर सकता है। आपश्री ने अपने काव्य मे सर्वत्र यही प्रेरणा दी है।

आपश्री की काव्य शैली की भाषा प्रवाहपूर्ण व प्रभावशाली है। शब्द का सुन्दर सयोजन, विचारो का सुगठित स्वरूप और अभिव्यक्ति की

स्पष्टता आपकी सजग शिल्प-चेतना का स्पष्ट उदाहरण है। आपके काव्य में सहजता, तन्मयता और प्रगल्भता का सुन्दर संयोजन हुआ है।

भाषा की दृष्टि से आपश्री का काव्य-साहित्य हिन्दी, राजस्थानी और संस्कृत में रहा है। समय-समय पर आपश्री ने राजस्थानी भाषा मे भी प्रकीर्णक कविताएँ लिखी हैं। जैन साधना मे तप का अत्यधिक महत्व रहा है। जब बहनें तप करती हैं, तब उन्हे भाई को सहज स्मृति हो आती है। आपश्री ने बहन की भावना का चित्रण राजस्थानो भाषा में इस प्रकार किया है—

वीरा आई जो, वीरा आई जो, थे तपस्या रे माय हो।
वीरा था बिना, सूनो लागसी जी ॥
वीरा जग में वीरा जग में सगलो साथ हो।
वीरा मिल्यो न मिल जावसी जी ॥

भाई बहन को उत्तर देता है—

बेनड़ आयो बेनड़ आयो, मैं मरुधर सूं चाल हो।
बेनड तपस्या रो, भाव देखने जो ॥
बेनड़ थारो वेनड़ थारो, मे धर्म रो वीर हो।
बेनड़ लायो मे तपस्या री चूंदड़ो जी ॥

आपने मोहग्रस्त व्यक्तियो को फटकारते हुए कहा—

आयो केवां ने, वाह-वाह आयो केवां ने।
थे अमर नहीं होरे वाने के आयो केवाने ॥

× × ×

कूड कपट कर माल कमाई, तिजोरी मे राख्यो हो।
कालो धन नहीं रेला थारे, इन्दिरा भाख्यो हो ॥

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य सफल कवि हैं। उनकी कविताओ में भाषा की दुरूहता नही; किन्तु भावो की गभीरता है। उनका अधिकाश कविता साहित्य अप्रकाशित है। आपश्री ने जैन इतिहास के उन ज्योतिर्धर नक्षत्रो के जीवनो को चित्रित किया है जिनका जीवन प्रेरणाप्रद रहा है। कवि के काव्य का आधार सदाचार, सत्य, अहिंसा आदि मानवीय सद्गुणो का प्रका-

शन है। आपश्री का काव्य-साहित्य भाषा, अलंकार, कला आदि दृष्टियों से सुन्दर ही नही अति सुन्दर है।

आपश्री के काव्य की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं :—

(१) भाषा भावो को वहन करने में पूर्ण सक्षम है।

(२) चिन्तन में स्पष्टता व तेजस्विता है।

(३) काव्य में लयात्मकता के साथ मनोहारी सहज तुकान्तता भी है।

(४) कविता में शब्दाडम्बर का अभाव है तथा वह सहज और हृदय-ग्राही है।

(५) काव्य का उद्देश्य और लक्ष्य स्पष्ट है।

(६) गहन गंभीर बात को सक्षेप मे सूक्ति रूप में कहने मे कवि पूर्ण दक्ष है।

(७) काव्य की मात्रा जहाँ विपुल है वहाँ पर काव्य-कला की श्रेष्ठता व ज्येष्ठता भी अक्षुण्ण है।

□□

७ संस्कृत-साहित्य

सस्कृत भाषा भारत की एक अमर थाती है। सम्प्रदायवाद, पथवाद, प्रान्तवाद, जातिवाद के कृत्रिम भेदो को विस्मृत होकर यहाँ के मूर्धन्य मनीषियो ने गंभीर व गहन विषयो के प्रतिपादन हेतु इस भाषा को अपनाया। वैदिक मनीषियो ने जहाँ इस भाषा के भण्डार को भरने का प्रयास किया वहाँ पर जैन और बौद्ध विज्ञगण भी पीछे नही रहे। उन्होने भी हजारो ग्र थ इस भाषा में लिखे। आचार्य हरिभद्र, आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य मलयगिरि, आचार्य अभयदेव, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, उपाध्याय यशोविजयजी, आचार्य अकलक, आचार्य समन्तभद्र, विद्यानन्द प्रभृति शताधिक जैन विज्ञो ने सस्कृत भाषा मे दर्शन, साहित्य, व्याकरण, काव्य आदि पर जिन मौलिक ग्रन्थो का सृजन किया, वह भारत की अमर सम्पत्ति है। इसी प्रकार बौद्ध-विद्वान् अश्वघोष, वसुबन्धु, दिङ्नाग, नागार्जुन, धर्मकीर्ति आदि महान् विद्वानो ने सस्कृत भाषा मे न्याय, दर्शन, आदि विषयो पर विपुल साहित्य का सृजन किया है।

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य की ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने के कारण सस्कृत भाषा के प्रति प्रारम्भ से ही रुचि रही है। विद्यार्थी जीवन मे ही वे संस्कृत भाषा मे लिखते रहे। सस्कृत भाषा मे उनकी अनेक रचनाएँ है। वे सभी रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित है। 'अमरसिंह महाकाव्य' का प्रथम सस्करण विक्रम सवत् १९९३ मे प्रकाशित हुआ था; किन्तु बाद मे आपश्री को लगा कि रचना अपूर्ण है अत पुन' उस पर नवीन रूप से लिखा और वह तेरह सर्गों मे स्रग्धरा, शार्दूल-विक्रीडित, वसन्ततिलका प्रभृति विविध छन्दो मे लिखा गया है। इसमे रूपक, वक्रोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रासादि विविध अलकारो का भी प्रयोग हुआ है। यह आपश्री का उत्कृष्ट काव्य है।

प्रस्तुत काव्य मे आपश्री ने ब्रह्मचर्य का विश्लेषण करते हुए लिखा है—

ब्रह्मचर्यं जगति तनुते, ब्रह्मचर्यं प्रशस्तम्,
यस्योत्कर्षं भुवनविदित, कोऽपि वक्तु न शक्तः।

रम्य रूपं स्पृशति तृणक, लज्जमान परन्तु,
स्वस्यास्तित्वं कथमपि धरन् नृत्यतीवं तदग्रे ॥

अर्थात् संसार मे प्रशस्त ब्रह्मचर्य ने महान् आश्चर्य फैला रखा है, जिस ब्रह्मचर्य के विश्व विख्यात वैशिष्ट्य को कोई भी कहने के लिए समर्थ नही हो सका है। यहाँ तक कि रमणीय रूप भी लज्जित होकर तिनके तोड़ने लगता है। किन्तु यह अपने अस्तित्व को इसी प्रकार रखकर ब्रह्मचर्य के सामने नृत्य करता रहता है। अर्थात् यह ब्रह्मचर्य ही जगदुत्तम है।

आचार्य सम्राट् अमरसिंह जी महाराज के चरित्र के सम्बन्ध मे कवि अपनी विनययुक्त भावना अभिव्यक्त करता है—

सत्सुश्रेष्ठ श्रुतिमतियुत ज्ञानिगुण्येषु वन्द्यम्,
लक्ष्मीवन्त प्रथितसमिति, सिद्धगुप्ति प्रसिद्धम्।
नत्वाचार्यं श्रमणममर सिहमेवाभिधानम्,
तस्यैवैतच्चरितमतुलं तायते वित्तावृत्तम् ॥

अर्थात्—श्रुति और मति से युक्त, ज्ञानियो एव गुणियो मे वन्दनीय, समितियो के पालक, गुप्तियो के साधक, प्रसिद्ध सन्तवर आचार्य अमरसिंह जी महाराज को नमस्कार कर मुझ पुष्कर मुनि के द्वारा उन आचार्य महाराज का यह जाना हुआ अनुपम पवित्र चरित्र विस्तृत किया जा रहा है।

ज्येष्ठमल जी महाराज की स्तुति करते हुए आपश्री ने लिखा है—

ज्येष्ठमल्ल गुरुदेव श्रयते। भक्तजनो विजनोऽपि विजयते ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम्। वचनसिद्ध गुरुदेव गभीरम् ॥
महिमान लभते रमणीय। श्रिया शरण्य गुणभजनीयम् ॥
भजतु निरन्तरमतिकलिवीरम्। वचनसिद्ध गुरुदेव गभीरम् ॥

अर्थात्—जो ज्येष्ठमल जी गुरुदेव का आश्रय लेता है, वह भक्त पुरुष एकाकी रहकर भी विजय प्राप्त करता है और इतना ही नही वह लक्ष्मी का शरण्य, गुणो से प्राप्त चित्ताकर्षक माहात्म्य का अधिकारी होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान है। आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में, व्यास ने अग्निपुराण मे, विद्यानाथ ने प्रतापरुद्र यशोभूषा मे, आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन मे, अरिस्टोटल ने 'दि आर्ट आफ पोइट्री' मे, हेगेल ने 'फिलासफी आफ फाइन आर्ट्स' मे महाकाव्य के लक्षणो का विस्तार से विवेचन किया है। उन सभी के आधार पर महाकाव्य के मुख्य तत्व चार है—महान् कथानक, महान्-चरित्र, महान् सन्देश और महान् शैली।

महाकाव्य वह सांगोपांग, छन्दोवद्ध कथात्मक काव्यरूप है, जिसमें कथा-प्रवाह, अलंकृत वर्णन, और मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपाग और जीवन्त कथानक होता है जो रसात्मकता या प्रभान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण सक्षम है। महान प्रेरणा और महान् उपदेश भी प्रस्तुत काव्य में प्रतीकात्मक या अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है। यद्यपि प्रस्तुत काव्य मे काव्य सम्बन्धी रूढियो की जकड नही है, उसमे कवि ने अपनी स्वाभाविक प्रतिभा का प्रयोग किया है। फलत. इसमें स्वाभाविकता और कलात्मकता दोनो एक साथ परिलक्षित होती है। उसमे भाषा की जटिलता नही; किन्तु सरसता है और अर्थ की गंभीरता है जो पाठको के मन को मोह लेती है।

काव्य-मर्मज्ञो ने काव्य के अनेक गुण वताये हैं। आचार्य भामह ने काव्यालंकार मे माधुर्य, प्रसाद और ओज ये तीन मुख्य गुण वताये हैं। माधुर्य और प्रसाद गुणवाली रचना मे समासान्त पदो का प्रयोग प्रायः नही होता, तो ओज गुणवाली रचना में समासबहुल पद प्रयुक्त होते हैं। आपश्री के प्रस्तुत काव्य में प्रसाद और माधुर्य इन दो गुणो की प्रधानता है। कही-कही पर ओज गुण भी परिलक्षित होता है।

आपश्री ने तीर्थंकरो की स्तुति के रूप में अष्टक, एकादशक, दशक आदि विविध रूप मे अनेक स्फुट रचनाएँ भी की हैं। जिनमे आपश्री के हृदय की विराट भक्ति छलक रही है। इस स्तोत्र साहित्य को पढ़ते हुए सिद्धसेन दिवाकर, आचार्य हेमचन्द्र और मानतुंग के स्तोत्र साहित्य का सहज ही स्मरण हो आता है।

भगवान् श्री ऋषभदेव जैन संस्कृति के ही नही; अपितु विश्वसंस्कृति के आद्य पुरुष हैं। संस्कृति और सभ्यता के पुरस्कर्ता हैं। भाव-विभोर होकर उनकी स्तुति करता हुआ कवि कहता है—

आसीद् यदा जगति विप्लव एव बुद्धेः,
जातौ जनस्य कृषि कर्मणि वान्यकार्ये।
त्राताऽयमेव विषमे, विषये तदाऽभूत्,
तीर्थंकरं तमृषभं सततं नमेयम्॥

भगवान् शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर हैं। विश्व मे शान्ति-संस्थापक है। उनके नाम मे ही अद्भुत शक्ति है, जिससे सर्वत्र शान्ति की सुरलहरी झनझनाने लगती है। कवि कह रहा है—

सुशान्तिनाथस्य पदारविन्दयोः,
नमस्त्रिकृत्त्वोऽपि पुनर्मुहुर्मुहुः।
नमामि जन्मान्तरकर्मशान्तये,
शिवाय भिक्षुस्तव पुष्करो मुनिः ।।

भगवान् पार्श्व तेईसवें तीर्थंकर है। आधुनिक इतिहासकार भी जिनके अस्तित्व को मानते है। भगवान् पार्श्वनाथ की महान् विशेषता का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

धृतोत्सर्गोद्रेकः प्रभुरपि विभावं न मनसा,
स्पृशत्येवं किंचित् किमिति कथनीयं पुनरिदम्।
भवेन्नाम्नाऽप्येतज् जगति यशसः स्यात्फलमदः,
प्रभुं पार्श्वं वन्दे प्रयमिमतिभूत्यै प्रतिदिनम्।

विश्वज्योति श्रमण भगवान् महावीर का उग्रतप सभी तीर्थंकरों से बढकर था। उन्होने उग्रतप को साधना से कर्मों को नष्ट कर, दिया और शिवत्व को प्राप्त किया, ऐसे महान वीरप्रभु की स्तुति कर कवि अपने आप को धन्य अनुभव करता है। देखिए—

महातपोभिः परितप्य विग्रहम्,
प्रहाय कर्माणि शिवं शुभं पदम्।
प्रसिद्ध संस्तार पथा प्रत्यात्यसौ,
पथः प्रणेतारमहं प्रभुं भजे ।।

इस प्रकार कवि का संस्कृत स्तोत्र साहित्य साधक के अन्तर्मानस में भक्ति की भागीरथी प्रवाहित करता है। □□

८ गद्य-साहित्य

आपश्री ने पद्य मे ही नही गद्य की विविध विधाओ मे भी बहुत लिखा है। आपश्री ने विविध विषयो पर निबन्ध लिखे हैं। एक विचारक ने लिखा है कि निबन्ध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्णशक्ति का विकास निबन्ध मे ही सबसे अधिक सम्भव है। अतः भाषा की दृष्टि से निबन्ध गद्य-साहित्य का सबसे अधिक और विकसित रूप है। सामान्य लेख में लेखक का व्यक्तित्व निखरता नही है। वह प्रच्छन्न रूप मे रहता है जबकि निबन्ध मे लेखक का व्यक्तित्व पूर्णरूप से निखरता है। संक्षेप मे कहा जाय तो निबन्ध गद्य-काव्य की वह विधा है, जिसमे लेखक एक सीमित आकार मे इस विविध रूप जगत के प्रति अपनी भावात्मक एवं विचारात्मक प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करता है।

मुख्य रूप से निबन्ध के दो भेद हैं—भावात्मक और विचारात्मक। आपश्री ने दोनो ही प्रकार के निबन्ध लिखे है। निबन्धो मे अनुभूति की प्रधानता है। विचारात्मक निबन्ध मे आपने विवेचनात्मक एवं गवेषणात्मक दोनो प्रकार के निबन्ध लिखे है। आपके निबन्धो मे कल्पना, अनुभूति और तर्कपूर्ण मधुर व्यग भी है। आपके निबन्धो की शैली सरस, सरल और हृदय के विराट् भावो को अभिव्यक्त करने मे पूर्ण सक्षम है। समय-समय पर आपश्री के निबन्ध पत्र-पत्रिकाओ मे और विभिन्न ग्रन्थो मे प्रकाशित हुए है और कितने ही निबन्धो की पुस्तकें अभी अप्रकाशित है। आपश्री के निबन्धो के कुछ उद्धरण मैं यहाँ दे रहा हूँ।

पुद्गल द्रव्य पर चिन्तन करते हुए आपश्री ने लिखा है—

"न्याय-वैशेषिक जिसे भौतिक तत्त्व कहते है, विज्ञान जिसे मैटर कहता है, उसे ही जैनदर्शन ने पुद्गल कहा है। बौद्ध साहित्य मे 'पुद्गल' शब्द "आलय विज्ञान" "चेतना सतति" के अर्थ मे व्यवहृत हुआ है। भगवती मे अभेदोपचार से पुद्गलयुक्त आत्मा को पुद्गल कहा है। पर मुख्य रूप से जैन साहित्य मे 'पुद्गल' का अर्थ 'मूर्तिक द्रव्य' है, जो अजीव है। अजीव द्रव्यो मे पुद्गल द्रव्य विलक्षण है। वह रूपी है, मूर्त है, उसमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण

पाये जाते हैं। पुद्गल में सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु से लेकर बडे से बड़े पृथ्वी स्कन्ध तक मे मूर्त गुण पाये जाते हैं। इन चारो गुणो में से किसी में एक, किसी में दो और किसी मे तीन गुण हो, ऐसा नही हो सकता। चारो ही गुण एक साथ रहते है। यह सत्य है कि किसी में एक ही गुण की प्रमुखता होती है, जिससे वह इन्द्रियगोचर हो जाता है, और दूसरे गुण गौण होते है जो इन्द्रिय-गोचर नही हो पाते है। इन्द्रिय अगोचर होने से हम किसी गुण का अभाव नही मान सकते। आज का वैज्ञानिक हाइड्रोजन और नाइट्रोजन को वर्ण, गन्ध और रसहीन मानते है, यह कथन गौणता को लेकर है। दूसरी दृष्टि से इन गुणो को सिद्ध कर सकते है। जैसे 'अमोनिया' मे एकाश हाइड्रोजन और तीन अश नाइट्रोजन रहता है। अमोनिया मे रस और गन्ध ये दो गुण होते है। इन दोनो की नवीन उत्पत्ति नही मानते चूँकि यह सिद्ध है कि असत् की कभी भी उत्पत्ति नही हो सकती और सत् का कभी नाश नही हो सकता; इसलिए जो गुण अणु मे होता है, वही स्कन्ध मे आता है। हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के अश से अमोनिया निर्मित हुआ है इसलिए रस और गन्ध जो अमोनिया के गुण है, वे गुण उस अंश में अवश्य ही होने चाहिए। जो प्रच्छन्न गुण थे, वे उनमें प्रकट हुए हैं। पुद्गल में चारो गुण रहते है; चाहे वे प्रकट हों या अप्रकट हो। पुद्गल तीनो कालो मे रहता है अतः सत् है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त हैं। जो अपने सत् स्वभाव का परित्याग नही करता, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त है और गुण-पर्याय सहित है, वह द्रव्य है। व्यय के बिना उत्पाद नही होता और उत्पाद के बिना व्यय नही होता, उत्पाद और व्यय के बिना ध्रौव्य नही हो सकता। द्रव्य का एक पर्याय उत्पन्न होता है, दूसरा नष्ट होता है पर द्रव्य न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, किन्तु सदा ध्रौव्य रहता है…।

अहिंसा और अनेकान्त का विश्लेषण करते हुए आपश्री ने बहुत ही स्पष्टता से लिखा है—

"अहिंसा और अनेकान्त जैनदर्शन के प्राणभूत तत्त्व है। हमारे शरीर मे जो स्थान मन और मस्तिष्क का है, वही स्थान जैन दर्शन मे अहिंसा और अनेकान्त का है। अहिंसा आचारप्रधान है और अनेकान्त विचार प्रधान है। अहिंसा व्यावहारिक है, उसमे प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा, मैत्री व आत्मौपम्य की निर्मल भावना अंगडाइयाँ लेती है तो अनेकान्त बौद्धिक अहिंसा है। उसमें विचारो की विषमता, मनोमालिन्य, दार्शनिक विचारभेद और

उससे उत्पन्न होने वाला संघर्ष नष्ट हो जाता है। सह-अस्तित्व, सद्व्यवहार के विमल विचारो के फूल महकने लगते है।"

विश्व मे अशान्ति का मूल कारण क्या है? इस पर विचार करते हुए आपश्री ने अपने "स्यादवाद और सापेक्षवाद : एक अनुचिन्तन" निबन्ध में चिन्तन करते हुए लिखा है—

"आज का जन-जीवन सघर्ष से आक्रान्त है। चारो ओर द्वेष और द्वन्द्व का दावानल सुलग रहा है। मानव अपने ही विचारो के कटघरे मे आवद्ध है। आलोचना और प्रत्यालोचना का दुश्चक्र तेजी से चल रहा है। मानव एकान्त पक्ष का आग्रही होकर अन्धविश्वासो के चंगुल मे फँस रहा है। क्षुद्र व सकुचित मनोवृत्ति का शिकार होकर एक दूसरे पर छीटाकसी कर रहा है। वह अपने विचारो को सत्य और दूसरे के विचारो को मिथ्या सिद्ध करने मे लगा हुआ है। "सच्चा सो मेरा" इस सिद्धान्त को विस्मृत होकर "मेरा सो सच्चा" इस सिद्धान्त की उद्‌घोषणा कर रहा है। परिणामतः इस सकीर्ण वृत्ति से मानव समाज में अशान्ति की लहर लहराने लगी है। उतना ही नही जब मानव में सकीर्ण वृत्ति से उत्पन्न हुआ अहंकार, आग्रह तथा असहिष्णुता का चरमोत्कर्ष होता है, तो धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में भी रक्त की नदियाँ बहने लगतो हैं। उस परिस्थिति के निराकरण के लिए ही जैनदर्शन ने विश्व को अनेकान्तवाद की दिव्य दृष्टि प्रदान की।"

दान जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर गुरुदेवश्री ने एक विराट्‌काय ग्रन्थ का निर्माण किया है। दान की व्याख्या करते हुए आपने लिखा है—"दान दो अक्षरो से बना हुआ एक अत्यन्त चमत्कारी शब्द है। आप दान शब्द सुनकर चौकिए नही। दान से यह मत समझिए कि आपकी अपनी कोई वस्तु छीन ली जायगी या आपको कोई वस्तु जबरन दी जायगी। दान एक धर्म है और धर्म कभी किसी से जबरन नही करवाया जाता। हाँ, उसके पालन करने से लाभ और न करने से हानि के विविध पहलू अवश्य ही समझाये जाते है। इसी प्रकार दान कोई सरकारी टैक्स नही है, कोई आयकर, विक्रयकर या सम्पत्ति-कर नही है जो जबरन किसी से लिया जाय अथवा दण्डशक्ति के जोर से उसका पालन कराया जाय। चूँकि दान धर्म है अथवा पुण्य कार्य है इस-लिए वह स्वेच्छा से ही किया जा सकता है।"

पुण्य पर चिन्तन करते हुए गुरुदेवश्री ने लिखा है—

"भारतीय संस्कृति के सभी चिन्तको ने पुण्य-पाप के सम्बन्ध में विस्तार से चिन्तन किया है। मीमांसा दर्शन ने पुण्य-साधन पर अत्यधिक

बल दिया है। उसका अभिमत है कि पुण्य से स्वर्ग के अनुपम सुख प्राप्त होते हैं। उन स्वर्गीय सुखो का उपभोग करना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। पर जैन दर्शन के अनुसार आत्मा का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष का अर्थ है—पुण्य-पापरूपी समस्त कर्मों से मुक्ति पाना। यह देहातीत या संसारातीत अवस्था है। जब तक प्राणी संसार मे रहता है, देह धारण किये हुए है, तब तक उसे ससार मे रहना पडता है और उसके लिए पुण्य कर्म का सहारा लेना पडता है। पाप कर्म से प्राणी दु:खी होता है, पुण्य कर्म से सुखी। प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। स्वस्थ शरीर, दीर्घ आयुष्य, धन-वैभव, परिवार, यश, प्रतिष्ठा आदि की कामना प्राणिमात्र को है। सुख की कामना करने मात्र से सुख नही मिलता किन्तु सुख-प्राप्ति के सत्कर्म करने से सुख मिलता है। उस सत्कर्म को शुभयोग कहते है। आचार्य उमास्वाति ने कहा है—"योग: शुद्ध: पुण्यास्रवस्तु पापस्य तद्विपर्यास:"—शुभयोग पुण्य का आस्रव करता है और अशुभ योग पाप का।

शुभ योग, शुभ भाव या शुभ परिणाम और सत्कर्म प्राय: एक ही अर्थ रखते हैं, केवल शब्द व्यवहार का अन्तर हैं।

श्रावक धर्म पर भी आपने एक विराट्काय चिन्तनप्रधान ग्रन्थ का सृजन किया है। उसमें आपश्री ने व्रत के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए लिखा है—

व्रत एक पाल है, एक तटबन्ध है, आप जिस गाँव में रहते हैं, वहाँ यदि बिना पाल का तालाब हो तो क्या आप वहाँ रहना पसन्द करेंगे ? आप कहेगे ऐसी जगह वर्षा के दिनो मे एक दिन भी रहना खतरे से खाली नहीं है। न मालूम कब तालाब मे पानी बढ जाय और वह बाहर निकलकर गांव को डुबो दे, मकानो को ढहा दे। व्रत भी एक पाल है, एक तटबन्ध है, जो स्वच्छन्द बहते हुए जीवन प्रवाह को मर्यादित बना देता है, नियन्त्रित कर देता है।

व्रत जीवन को स्वयं नियंत्रित करने के लिए स्वेच्छा से स्वीकृत मर्यादा है, जिसमे रहकर मानव अपने आपको पशुता, दानवता, उच्छृंखलता, पतन, आत्म-विकास मे अवरोध उत्पन्न करने वाले असयम आदि को रोकता है।

व्रत एक अटल निश्चय है। मानव जब तक व्रत नही लेता, तब तक उसका मन डाँवाडोल रहता है, उसकी बुद्धि निश्चल और स्थिर नही हो पाती। व्रत ग्रहण करने पर मानव का निश्चय अटल हो जाता है।

सम्यक्‌दर्शन पर चिन्तन करते हुए आपश्री लिखा है—"इस विराट विश्व मे जिधर भी हम दृष्टि उठाकर देखते है, उधर अशान्ति की ज्वालाएँ धधक रही हैं। विग्रह और सघर्ष के ज्वालामुखी फूट रहे है। व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र सभी अशान्त हैं, खिन्न है। आग के दहकते हुए गोले की तरह जी रहे हैं। अत्यन्त सतप्त, विक्षुब्ध और तनावपूर्ण स्थिति है। बौद्धिक विकास चरम और परम बिन्दु तक पहुँच गया है। मानव ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया है। वैज्ञानिक साधनो के प्राचुर्य से भौतिक सुख सुविधा के तथा आर्थिक, समृद्धि के गगनचुम्बी अम्बार लग चुके हैं तथापि मानव की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विपन्नता दूर नही हुई है। शिक्षा प्रदान करने वाले हजारो विश्वविद्यालय हे, जहाँ मानव विविध विद्याओ मे उच्चतम शिक्षा प्राप्त करता है। शिक्षा प्राप्त करने पर भी वह अपनी क्षुद्र-स्वार्थवृत्ति व भोग-लोलुपता पर विवेक और सयम का अकु श नही लगा पाया है।

नित्य नई ऐच्छिक मुख-सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी मन सन्तुष्ट नही है। वैज्ञानिक साधनो से विश्व सिमटकर अत्यधिक सन्निकट आ चुका है। किन्तु मानव-मानव के बीच हृदय की दूरी प्रतिपल-प्रतिक्षण अधिक से अधिकतर होती चली जा रही है। वह तन से सन्निकट है, किन्तु मन से दूर है। सुरक्षा के साधनो की विपुलता व ऊँचाई अनन्त आकाश को छू रही है तथापि मानव का मन भय से सन्त्रस्त है। हृदय आकुल-व्याकुल है, वह विध्वंसकारी शस्त्रास्त्रो के निर्माण मे प्रतिस्पर्धा लगा रहा है। ज्ञात नही, यह प्रतिस्पर्धा कब सम्पूर्ण मानव जाति की अन्त्येष्टि का निमित्त बन जाए। एक व्यक्ति के हृदय मे जलती हुई आग कुछ ही क्षणो मे ससार को भस्म कर सकती है। व्यक्ति का रोग विश्व का रोग बन सकता है। अर्थ की अत्यधिक अभिवृद्धि होने पर भी मानव की अर्थ-लोलुपता कम नही हुई है। वह द्रौपदी के दुकूल की तरह बढ रही है। एक वर्ग दूसरे वर्ग को निगलने के लिए व्यग्र है। भोगोपभोग की सामग्री को प्राप्त करने के लिए वह पागल कुत्ते की भाँति वेतहाशा दौड रहा है। अधिकाधिक हैरान व परेशान हो रहा है।

मानव समाज का यह सब से बडा दुर्भाग्य है कि वह भौतिकवाद की दौड मे अध्यात्मवाद को भुलाये जा रहा है, त्याग को छोडकर भोग की ओर गति कर रहा है। अपरिग्रह को छोडकर परिग्रह की ओर लपक रहा है। सभ्यता और संस्कृति के नाम पर उच्छृ खलता व विकृति को अपना रहा है।

समता, स्वाभाविकता और सरलता के स्थान पर विषमता, कृत्रिमता और छल-छद्म का प्राधान्य हो रहा है, उसके अन्तर्मानस में उद्दाम-वासनाएँ पनप रही हैं और ऊपर से वह सच्चरित्रता का अभिनय कर रहा है। बाह्य और आभ्यन्तर जीवन मे एकरूपता का अभाव है। कथनी और करनी मे आकाश-पाताल सा अन्तर है। वह वैज्ञानिक तकनीक को अधिक गहराई से जानता है; पर अपने सम्बन्ध में बिल्कुल ही अनजान है। बाहर की सफाइयाँ खूब हो रही है, किन्तु भीतर मे स्वच्छता का अभाव है, तन उजला है, मन मलिन है। इसीलिए एक शायर ने कहा है—

सफाइयाँ हो रही हैं जितनी,
दिल उतने ही हो रहे हैं मैले।
अन्धेरा छा जायेगा जहाँ मे,
अगर यही रोशनी रहेगी॥

भौतिकवाद की इस विकट बेला मे मानव को यह चिन्तन करना है कि शान्ति और आनन्द कहाँ है? यह भौतिकवादी भावना स्वार्थवृत्ति को पनपा सकती है, शोषण और पाशविक प्रवृत्तियाँ बढा सकती है पर शान्ति और आनन्द प्रदान नही कर सकती। विवेक और संयम को उद्‌बुद्ध नही कर सकती। भारत के मूर्धन्य मनीषियो ने गहराई से इस तथ्य को समझा और उन्होने स्पष्ट शब्दो में यह उद्‌घोषणा की—मानव का भौतिकवाद की ओर जो अभियान चल रहा है वह आरोहण की ओर नही अवरोहण की ओर है। वह मानव को उत्थान के शिखर की ओर नही, पर पतन की गहरी खाई की ओर ले जा रहा है। जब तक मानव भौतिकवाद मे भटकता रहेगा तब तक सच्चे सुख के संदर्शन नही हो सकते। सुख-शान्ति और सन्तोष को प्राप्त करने के लिए अपने अन्दर ही अवगाहन करना पडेगा। जैसे कस्तूरिया मृग अपनी नाभि मे कस्तूरी होने पर भी उसकी मधुर सौरभ के लिए वन-वन भटकता है, वही स्थिति आज के मानव की है। वह बाहर भटक रहा है किन्तु अपने अन्दर नही झाँक रहा है। अपने अन्दर झाँकना, आत्मावलोकन करना, शुद्ध आत्मा का अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मे आचार्य अमृतचन्द्र ने स्पष्ट शब्दो मे लिखा है—'आत्मदर्शन सम्यग्दर्शन है, आत्मज्ञान सम्यग्ज्ञान है और आत्मस्थिरता सम्यक्‌चारित्र है।' आध्यात्मिक साधना मे इन तीनो का गौरवपूर्ण स्थान है और यही मोक्ष मार्ग है?

सम्यग्दर्शन शब्द सम्यग् और दर्शन इन दो शब्दो से निर्मित है। दोनो शब्द गम्भीर अर्थ गौरव को लिए हुए है। हम यहाँ प्रथम दर्शन शब्द को समझ लें तो सहज मे सम्यग्दर्शन का हार्द समझ में आ सकता है। तत्त्व-चिन्तन की एक विशिष्ट धारा दर्शन के नाम से जानी और पहचानी जाती है, जैसे सांख्यदर्शन, बौद्धदर्शन, जैनदर्शन आदि। यहाँ पर दर्शन शब्द प्रस्तुत अर्थ मे व्यवहृत नही हुआ है। जैन आगम साहित्य मे निराकार उपयोग या सामान्य ज्ञान के लिए दर्शन शब्द आया है। वस्तु की सत्ता मात्र का अवलोकन करना दर्शन है। वह अर्थ भी यहाँ अभीष्ट नही है। जिसके द्वारा देखा जाय या जिससे देखा जाए वह दर्शन है, केवल आँखो से देखना भी यहाँ इष्ट नही है। अनेकार्थ सग्रह मे दर्शन के अर्थ मे दर्पण, उपलब्धि, बुद्धि, शास्त्र, स्वप्न, लोचन, कर्म, देश आदि विविध पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए है। यहाँ पर दर्शन का अर्थ केवल नेत्रो से निहारना ही नही है किन्तु अन्तर्दर्शन है। सम्यग्दर्शन मोक्ष का साधन रूप है। इसीलिए यहाँ पर दर्शन का अर्थ दृष्टि और निश्चय है। दृष्टि भ्रान्त भी हो सकती है और निश्चय मिथ्या हो सकता है। अत. दर्शन के पूर्व सम्यग् शब्द व्यवहृत हुआ है। जिसका अर्थ है ऐसी दृष्टि जिस मे किसी भी प्रकार की भ्रान्ति नही है, और अयथार्थं भी नही है। ऐसा निश्चय, जो पूर्णत. वास्तविकता को लिए हुए है। सम्यग्दर्शन जीवन की दिव्य दृष्टि है। आचार्य उमास्वाति ने और आचार्य अभयदेव ने सम्यग्दर्शन का अर्थ "श्रद्धा" किया है। नियमसार की तात्पर्य वृत्ति मे लिखा है कि शुद्ध जीवास्तिकाय से उत्पन्न होने वाला जो परम श्रद्धान है वही दर्शन है। जहाँ पर तत्व या किसी पदार्थ का निश्चय, श्रद्धान, विवेक या रुचि आत्मलक्षी हो, वही सम्यग्दर्शन होता है।

दर्शन के पहले सम्यग् विशेषण लगाने का यही उद्देश्य है कि देखना सम्यग् हो, जब दर्शन के पूर्व सम्यग् शब्द लग जाता है तो वह दर्शन आध्यात्मिक बन जाता है। मिथ्यात्व की स्थिति मे दर्शन परलक्षी होता है। आचार्य पूज्यपाद का मन्तव्य है कि पदार्थों के यथार्थ प्रतिपत्तिविषयक श्रद्धान का सग्रह करने के लिए ही दर्शन के पहले 'सम्यग्' विशेषण दिया है। व्याकरण की दृष्टि से "सम्यग्" के मुख्य तीन अर्थ है—प्रशस्त, सगत और शुद्ध। प्रशस्त विश्वास ही सम्यग्दर्शन है, प्रशस्त का एक अर्थ मोक्ष भी है। अत मोक्षलक्षी दर्शन सम्यग्दर्शन है।

□□

९ संस्मरण-साहित्य

सस्मरण, साहित्य की एक सशक्त विधा है। अन्यान्य विधाओ से यह अधिक रुचिकर और प्रिय होती है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में नित्य नयी घटनाएँ घटित होती है। कुछ घटनाएँ चलचित्र की तरह आती है और चली जाती है। किन्तु कुछ घटनाओ की छाप अमिट हो जाती है। वे भुलाने पर भी भुलाई नही जा सकती हैं। स्मृत्याकाश मे ये समय-समय पर बिजली की तरह कौंधती है। सस्मरण मधुर भी होते है, कडवे भी होते है, क्योकि जीवन में मधुरता और कटुता दोनो का योग होता है। कभी ऐसा नही होता कि जीवन में मिठास ही हो, कड़ुवाहट न हो। केवल मिठास से जीवन रूढ बन जाता है और केवल कड़ुवाहट से नीरस। यह सत्य है कि संस्मरण में प्रायः जीवन के मधुर क्षणो का ही चित्रण होता है। सस्मरण लिखने की अपनी शैली है। वर्णन के अनुसार भाषा मे गम्भीरता और सरलता होती है। आपश्री के सस्मरण-लेखन की शैली बडी अद्‌भुत और प्रभावक है। भावो का अंकन बहुत ही चित्ताकर्षक हुआ है। आपके सस्मरणो के कुछ उदाहरण यहाँ पर प्रस्तुत किए जा रहे है—

"गौर-वर्ण की देह में देदीप्यमान कनक की सी आभा, मँझला कद, भव्य भाल, सुन्दर व स्वस्थ शरीर, आकर्षक व्यक्तित्व, तन से वृद्ध, मन से जवान, सीधा-सादा रहन-सहन, आडम्बररहित जीवन—यह है आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज साहब का छविचित्र।"

एक विचारक की वाणी मे "सुख की चांदनी मे सभी हँस सकते है पर दुःख की दुपहरी मे हँसना सरल नही।" परन्तु श्रद्धेय आचार्यवर ने सुख की शुभ्र चाँदनी मे ही नही; किन्तु कष्टो की कठिन दोपहरी मे भी हँसना सीखा है। कभी भी और किसी भी अवस्था मे आपश्री को सदा मुस्कराते ही पाएँगे। मुश्किलें उन्हे हतोत्साहित नही करती, प्रोत्साहित ही करती हैं। सदा प्रसन्न रहना ही उनका सहज गुण है।

आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के सम्बन्ध में आपने लिखा है—

"आचार्य प्रवर महामहिम आनन्द ऋषिजी महाराज श्रमण संघ की एक महान् जगमगाती ज्योति हैं। जिनका जीवन सूर्य के समान तेजस्वी और चाँद के समान सौम्य है। उनका जीवन सद्‌गुणो का समुद्र है। उस समुद्र का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाय, यह गम्भीर चिन्तन के पश्चात् भी समझ मे नही आ रहा है। उनके विराट व्यक्तित्व रूपी सिन्धु को शब्दो के बिन्दुओ मे बाँधना बड़ा ही कठिन है।"

"अजरामपुरी अजमेर में बृहद् साधु सम्मेलन का भव्य आयोजन। जन-जन के मन मे अपार उत्साह बरसाती नदी की तरह उमड रहा था। एक से एक बढकर प्रतिभासम्पन्न सन्त पधार रहे थे। उस समय सभी सन्तो की व्यवस्था की जिम्मेदारी हम राजस्थानी सन्तो पर थी जिससे सभी सन्तो के साथ हमारा मधुर सम्बन्ध होना स्वाभाविक था। उस समय आनन्द ऋषिजी महाराज के हृदय की शुद्धता, मन की सरलता और अपने सिद्धान्तो पर पहाड की तरह अटल रहते हुए देखकर मेरे मन मे उनके प्रति सहज श्रद्धा जागृत हुई।"

मन्त्री मुनि श्री हजारीमलजी महाराज के सम्बन्ध मे आपने लिखा है—

"वे उच्चकोटि के सहृदय सन्त थे। उनका जीवन आचार और विचार का पावन संगम था। आज के युग मे प्रतिभासम्पन्न विद्वानो की कमी नही है। यह फसल बडी तेजी से बढती जा रही है। विचारको का भी बाजार बड़ा गर्म है। ग्रन्थकारो का तो कहना ही क्या? वे भी अल्पसख्यक नही रहे; पर सच्चे सन्त बड़े मँहगे हो गये है। पर स्वामीजी महाराज सच्चे सुसस्कारी सन्त थे। इसी कारण जन-जन के हृदय के हार और जन-मन के सम्राट थे।"

पण्डित श्रीमलजी महाराज के सम्बन्ध में आपने लिखा है—

"उस समय मैं "लघु सिद्धान्त कौमुदी" पढ रहा था, काव्य और न्याय के ग्रन्थो का भी अध्ययन चल रहा था। सुना, नया बाजार के स्थानक मे स्थित मुनिश्री श्रीमलजी, पण्डित अम्बिकादत्तजी से सिद्धान्त कौमुदी पढ रहे हैं। उनसे मिलने की जिज्ञासा तीव्र हुई पर शहर मे मिलना सम्भव नही था। प्रात वे जिधर शौच के लिए जाते थे, उधर हम भी गये। जंगल का वह एकान्त शान्त स्थान। सम्प्रदायवाद से उन्मुक्त वातावरण। दिल खोलकर सस्कृत भाषा मे वार्तालाप हुआ। अनेक प्रश्नो पर विचार-चर्चा हुई। भय का भूत भागा और हम एक दूसरे के पक्के मित्र हो गये।'

□□

१० कथा-साहित्य

विश्व साहित्य में कहानी या कथा साहित्य का अत्यधिक महत्त्व रहा है। कथा विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य रहा है। विश्व के मूर्धन्य मनीषियों ने काव्य का आदिकाल निश्चित किया। उन्होने महर्षि वाल्मीकि को आदि-कवि माना। क्रौच पक्षी के जोडे पर शिकारी ने बाण का प्रहार किया, जिससे नर क्रौच छटपटाने लगा। उसकी दारुण वेदना और वियोग मे मादा क्रौच करुण क्रन्दन करने लगी, जिसे देखकर वाल्मीकि के हृत्तन्त्री के तार झनझना उठे और काव्य का सृजन हो गया, जिसे आदिकाव्य माना गया, किन्तु कथा या कहानी का इतिहास कितना पुराना है, यह अभी तक अज्ञात है।

पाश्चात्य या पौर्वात्य विज्ञो का अभिमत है कि भारतीय साहित्य में ऋग्वेद सबसे अधिक प्राचीन है। ऋग्वेद साहित्य का आदि ग्रन्थ है, किन्तु कथा-साहित्य ऋग्वेद से भी प्राचीन है। इतिहासविज्ञो का मानना है कि ऋग्वेद की रचना भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् ही हुई; किन्तु आर्यों के आगमन से पूर्व भारत मे विकसित रूप से धार्मिक और दार्शनिक परम्पराएँ थी और उनका साहित्य भी था। भले ही वह लिखित रूप मे न रहकर मुखाग्र रहा हो। वेद भी जब रचे गये तब लिखे नही गये थे। उन्हे एक-दूसरे से सुनकर स्मृति मे रखा जाता था, अत. वेदो को श्रुति भी कहा जाता है। इसी तरह जैन साहित्य भी सुनकर स्मरण रखने के कारण श्रुत कहलाता रहा है। कथा या कहानी श्रुति और श्रुत से भी प्राचीन है। कथा के प्रति मानव का सहज और स्वाभाविक आकर्षण है। सत्य तो यह है कि मानव का जीवन भी एक कहानी ही है। जन्म से जिसका प्रारम्भ होता है और मृत्यु के साथ अवसान होता है। कहानो कहने और सुनने की लालसा मानव मे आदिकाल से ही है।

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य ने कथा-साहित्य मे उपन्यास और कहानी दोनो लिखे हैं। उपन्यास मे जीवन के सर्वांगीण और बहुमुखी चित्र विस्तार से लिखे जाते हैं। यही कारण है कि उपन्यास की लोकप्रियता विद्युत गति से बढ रही है।

आज साहित्य के क्षेत्र मे उपन्यासो की वाढ ही आ रही है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है—"उपन्यास ने तो मनोरजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओं एवं नाटको का रस-रंग भो फोका कर दिया है। क्योकि ५ मील दौड़कर रग-शाला मे जाने की अपेक्षा पाँच सौ मील की पुस्तकें मँगा लेना ऐसा आसान हो गया है जो रग-मच को अपने पत्रो मे लपेटे हुए है।" उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ।" मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है। इस परिभाषा के प्रकाश मे सद्गुरुदेव के कथा-साहित्य को दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं—(१) उपन्यास और (२) कहानी साहित्य।

जैन श्रमण होने के नाते आप के उपन्यास भले ही आधुनिक उपन्यासो की कसौटी पर पूर्ण रूप से खरे न उतरें तथापि उन उपन्यासो मे दार्शनिक, सामाजिक और धार्मिक विषयो की गम्भीर गुत्थियाँ सुलझायी गयी हैं। आप श्री ने "जैन-कथाएँ" नामक कथामाला के अन्तर्गत कथा एव उपन्यास लिखे हैं जिनमे से ९४ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। शेष भाग प्रकाशित हो रहे हैं। प्रकाशित भागो मे प्रथम, चतुर्थ, षष्टम, नवम, दशम, चतुर्दश, पर्चविशति, पैंतीसवाँ, अडतालोसवाँ, उनपचासवां, छप्पनवां, अठावनवा, उनसठवा, साठवां, इकसठवा, वासठवा, तिरेसठवा, बहत्तरवा, तिहत्तरवा, चौहत्तरवां, तिरासीवा, पिचयासीवा, छियासीवा, निव्यासोवा और नब्बेवा भाग उपन्यास के रूप मे है। शेष भागो मे कथाएँ है। उपन्यास व कथाओ का मूल उद्देश्य नैतिक भाव जाग्रत करना है। आपश्री के उपन्यास व कथाओ की शैली अत्यधिक रोचक है। पढने-पढते पाठक झूमने लगता है। आपश्री के कथा-उपन्यासो का मूल स्रोत प्राचोन संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और जैन रास साहित्य रहा है। आपने उन प्राचीन कथाओ को आधुनिक रूप मे प्रस्तुत किया है।

गुरुदेवश्री की प्रत्येक कथा सरस व रोचक है। मानव स्वभाव व जीवन की यथार्थता के रंग-बिरगे चित्र प्रस्तुत करती है। वे प्रबुद्ध पाठक के मानस को झकझोरती हैं कि तू कौन है? तेरा जोवन विषय-वासना के दलदल मे फँसने के लिए नही है। यदि तू कर्मबन्धन करेगा तो उसके कटुफल तुझे ही भोगने पडेंगे। यदि तूने श्रेष्ठ कर्म किये तो उसका फल श्रेष्ठ प्राप्त होगा। यदि कनिष्ठ कर्म किये तो उसका फल अशुभ प्राप्त होगा। कर्मों का फल निश्चित रूप से सभो को भोगना पडता है। भोक्ता के हाथ मे कोई शक्ति

नही कि उन्हें भोगे बिना रह सके। गुरुदेवश्री ने कथाओं में पूर्वजन्म का भी चित्रण किया है, जिसके कारण व्यक्ति को इस जन्म में सुख और दु:ख प्राप्त होते हैं। कथाओ में इस बात पर भी बल दिया गया है कि अशुभ कृत्यो से बचो। जो व्यवहार तुम अपने लिए चाहते हो वैसा ही व्यवहार दूसरो के लिए भी करो। इन कथाओ मे जीवनोत्कर्ष की पवित्र प्रेरणाएँ दी गयी हैं। व्यसनो से बचने के लिए और सद्गुणो को धारण करने के लिए सतत प्रयास किया गया है।

इन कथाओ के सभी पात्र जैन-कथा साहित्य के निर्धारित प्रयोजन के अनुरूप ढाले गये हैं। इसमे कोई राजा है, रानी है, मन्त्री है, राजपुत्र है, कोई सेठ व सेठानी है। कोई चोर, कोई दुकानदार तो कोई सैनिक है। इस प्रकार सभी पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। स्वकृत कर्म का फल भोगते हैं। कर्म के अनुसार उनका जीवन यापन होता है और अन्त मे किसी न किसी का उपदेश श्रवण कर या किसी निमित्त से वे ससार से विरक्त हो जाते है। श्रमण जीवन या श्रावक जीवन को स्वीकार कर मुक्ति की ओर कदम बढाते है। इन कथाओ मे जीवनोत्कर्ष चारित्र द्वारा होता है। कषायो की मन्दता, आचार की निर्मलता के स्वर सर्वत्र झकृत हुए है। सीधे, सरल व नपे-तुले शब्दो मे वे पात्र की विशेषताएँ बतलाते है। इन कथाओ के वर्णनो मे उतार-चढाव नही है। जो सज्जन है वे जीवन की सान्ध्यवेला तक सज्जन ही बने रहे और दुर्जन व्यक्तियो का मानस भी उन सज्जनो के सम्पर्क से बदल जाता है। वह अपने कुकृत्यो को त्याग कर सुकृत्यो को अपनाते हैं। कथाएँ कुछ बडी है, कुछ छोटी। कथा-लेखन शैली कथा कहने के समान ही है। सभी कथाएँ वर्णनात्मक और उपदेशप्रधान है। यत्र-तत्र सूत्र रूप मे उपदेश भी दिया गया है। ये कथाएँ आधुनिक कहानी व उपन्यास की शिल्प की दृष्टि से भले ही कम खरी उतरें, क्योकि लेखक का उद्देश्य पाठक को शब्द-जाल मे व शैली के भँवर जाल मे उलझाना नही है, वह तो पाठको के जीवन का चारित्रिक दृष्टि से निर्माण करना चाहता है। इसलिए यत्र-तत्र उपदेश, नीति-कथन व उद्धरणो का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। भाषा मे चुम्बकीय आकर्षण है जो पाठको को सदा आकर्षित करता रहता है। कथोपकथन यथास्थान कथासूत्र को आगे बढाने मे उपयोगी हैं। ये सभी कथाएँ जैन-कथा साहित्य की सुन्दर व अनमोल मणियाँ हैं जो सदा चमकती रहेगी।

सक्षेप मे जैन कथाएँ प्रथम भाग से ६५ भाग तक की कथा सूची इस प्रकार है—

भाग	पृष्ठ	कथा नाम	कथा संख्या
१	१७२	धर्मवीर धन्ना	१
२	१६६	सती सुन्दरी, रत्नवती-रत्नपाल, महासती अजना	३
३	१८०	दामनक, हरिवल मच्छी, कामघट कथा, सहस्र-मल्ल चोर, रत्नशिखर	५
४	२०४	मणिपति चरित्र	१
५	१६०	इलापुत्र, चिलातोपुत्र, यवराज ऋषि, क्षुल्लक मुनि, ललिताग कुमार, सुकुमालिका, पुण्डरीक-कुण्डरीक, आचार्य आषाढभूति, थावर्चापुत्र	६
६	१८८	महाबल-मलयासुन्दरी चरित्र	१
७	१८४	महासती मदनरेखा, सती मृगासुन्दरी	२
८	१६०	सती शीलवती, हसराज-वच्छराज, राज-कुमारी सुनन्दा, प्रत्येकबुद्ध करकण्डु, प्रत्येकबुद्ध द्विमुख, प्रत्येकबुद्ध नग्गति, ब्रह्मदत्त चक्री, चक्रवर्ती सगर, धनद कुमार	६
६	२०२	समरादित्य केवली चरित्र	१
१०	२१०	जिनदास-सुगुणी चरित्र	१
११	१८०	वीरभाण-उदयभाण, सूरपाल-शीलवती	२
१२	२००	केसरिया-मोदक, हस-केशव, केशरी, रत्न-सार, बकचूल, मगल कलश, भोमकुमार, वसुराजा, अरुणदेव, कुलपुत्र महाबल, सुन्दर राजा	११
१३	१६६	चम्पकसेठ, अमरसेन-वयरसेन, चन्द्रसेन-चन्द्रावती, नूपुर-पण्डिता	४
१४	२३८	प्रद्युम्न चरित्र	१
१५	१८०	उत्तमकुमार, सुलस चरित्र	२
१६	२१२	विद्यासिद्ध वीर अम्वड, विद्याविलास	२

भाग	पृष्ठ	कथा नाम	कथा संख्या
१७	२१२	भविष्यदत्त चरित्र, जय-विजय चरित्र	२
१८	२०८	सम्यक्त्व से सम्बन्धित १५ कथाएँ	१५
१९	१९२	यशोधर नृप चरित्र, मणिशेखर	२
२०	१८८	सती जसमा ओडण, ऋषिदत्ता, लीलापत-झणकारा	३
२१	२१८	विक्रमादित्य की १७ साहस कथाएँ	१७
२२	२२६	विक्रमादित्य की २६ नीति एव धर्म कथाएँ	२६
२३	२२६	विक्रमादित्य की १८ कौतुक कथाएँ	१८
२४	१८२	विक्रमादित्यपुत्र-विक्रम चरित्र की ५ कथाएँ	५
२५	१९६	श्रीपाल-मैनासुन्दरी चरित्र	१
२६	१९४	महेश्वरदत्त चरित्र, अमरकुमार चरित्र	२
२७	२१५	अजापुत्र चरित्र, जिनसेन-रामसेन	२
२८	२२२	वसन्तकुमार, भीमसेन हरिसेन, जयसुन्दरी, चन्द्रसेन-लीलावती आदि	५
२९	२०४	लीलावती चरित्र, पुण्यपाल-गुणसुन्दरी, विद्यु-ल्लता, कनकसुन्दरी, सती अनन्तमती, सती पद्मिनी	६
३०	१७०	सम्यक्त्व कौमुदी की ११ कथाएँ	११
३१	२१६	सहदेव, अधे परीक्षक, भाविनी-कर्मरक्षित, प्रियकर राजा, देवयश चरित्र	५
३२	२१५	त्रिलोक सुन्दरी, रूपली, मंजुला सती, नटखट और बुद्धिविजय चरित्र	५
३३	१७६	कुसुमसेन-कुसुमवती, अरणक मुनि, अतुंकारी भट्टा, रत्नचूड श्रेष्ठी, विजय सेठ-विजया सेठानी, नवलशा हीरजी आदि १२ कथाएँ	१२
३४	२०४	पुण्यसार, मर्मभेद, सागर सेठ, कान्हड कठि-यारा, झाझरिया मुनि, जुट्ठिल श्रावक, श्रीपति सेठ आदि	८
३५	१८४	मानतुंग-मानवती चरित्र	१

भाग	पृष्ठ	कथा नाम	कथा संख्या
३६	१७६	वीरांगद-सुमित्र, सोमचन्द्र, धनदत्त और शुक, मत बोल, सगो की सगाई, वरदत्त (ज्ञानपंचमी कथा), दृढप्रहारी	७
३७	२००	सम्राट श्रेणिक से सम्बन्धित कथाएँ	२०
३८	२१६	सम्राट श्रेणिक एव अभयकुमार से सम्बन्धित कथाएँ	२१
३६	१५८	वीरसेन-कुसुमश्री	१
४०	१७८	बावना चन्दन, बीसा बोली, सोना सती	३
४१	१७२	धनदत्त चरित्र, शुभमती, चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त, वासवदत्ता-उदयन	४
४२	१७८	चन्दन-मलया, चित्रसेन-पद्मावती, धनदत्त व्यवहारी, लक्ष्मी-सरस्वती	४
४३	१७२	सवेगचरित, निमित्त भाषण, मुकनसिंह-वंसाला	३
४४	१५२	सिंहलकुमार, सदयवत्स-सावलिगा, मखतूल-जादी	३
४५	१५२	सत्यव्रती हरिश्चन्द्र, वत्सराज	२
४६	१६८	सती कुसुमवती, कृतपुण्य (कयवन्ना शाह)	२
४७	१६४	मणिचन्द्र-गुणचन्द्र, सती विनयवती, कामधेनु	३
४८	१७०	जयानन्द केवली चरित्र	१
४६	१४६	भुवनभानु केवली चरित्र	१
५०	१७०	मित्रसेन-धर्मसेन, सती रत्नवती, रतिसार कुमार, किस्मत का खेल, सोया सो खोया, माधवसिंह	६
५१	१५४	सपनो का सच (भरत चक्री के स्वप्न, राजा बिम्बसार के स्वप्न, चन्द्रगुप्त राजा के १६ स्वप्न) पुण्यपाल चरित्र	२
५२	१५६	सर्वज्ञप्रभा, मुक्तिप्रभा, भीमसेन, कविता की करामात, फूलो की रानी, सौतेली माँ, चार	

भाग	पृष्ठ	कथा नाम	कथा सख्या
		प्रश्न चार उत्तर, श्रीमती, लक्ष्मी का साहस	८
५३	१६०	रमणीक सेठ, वसन्तमाधो-मजुघोषा	२
५४	१५३	धर्मपाल, राजकुमारी स्मिता, स्वप्न सुन्दरी, विधि के विधान, माँ जैसी बेटी, राजा रसाल और शीलवती, जीवन का सार, दाडमिया सेठ, आचार्य स्कन्दक, लक्ष्मी पुञ्ज, पतिव्रता नारी, रोग का मूल, मइरावती	१३
५५	१५२	वीरमती जगदेव, प्रियकर राजा	२
५६	१५२	तरंगवती कथा	१
५७	१५०	चक्रवर्ती भरत, भ० शान्तिनाथ	२
५८	१८०	पतगसिह चरित्र	१
५९	१७६	कुवलयमाला	८
६०	१५८	कुवलयमाला	६
६१	१५६	कुवययमाला	७
६२	१५०	कुवलयमाला	९
६३	१६३	गोविन्दसिह चरित्र	१
६४	१५२	यक्षदिन्न, धर्मरुचि, धनमित्र-दृढमित्र, धर्मघोष, मच्छियमल्ल, निम्बक, सुन्दरीनन्द, माथुर-वणिक, शाम्ब पालक, क्षुल्लक श्रमण, सिद्धाचार्य, जा सा, कनककेतु, मगधसुन्दरी, वज्र-स्वामी, मुनि स्कन्दकुमार, दत्तमुनि, वारत्तमुनि, सागरचन्द्र मुनि, अमरदत्त राम व चपलाक्ष	२२
६५	१५८	सती रोहिणी, रतिसुन्दरी, सती नन्दयन्ती, नर्मदासुन्दरी, शृगारमजरी, गुणसुन्दरी, भुवनानन्दा, बलवीर कुमार	९
६६	१५०	आरामशोभा, पुण्याढ्य राजा, राजा यशोवर्मा, अग्निभूति, ब्राह्मणकुमार, हेलाक श्रेष्ठी, नागदत्त, वल्कलचीरी, विश्वभूति, साध्वी लक्ष्मणा	९
६७	१६०	गजसिह चम्पकमाला	१
६८	१५६	मानव जन्म पर दस दृष्टान्त, कर्मजा बुद्धि प्रियदर्शना, सती गुणमाला	१३

भाग	पृष्ठ	कथा नाम	कथा सख्या
६९	१७६	रतिसार-बधुमती, जिनचन्द्र, वीर धवल राजा, मदनसेन-तारासुन्दरी, विमलासती, श्रेष्ठी-पुत्र कमल, लड्डू लोभी, सुगन्धा, अशोक रोहिणी	९
७०	१७६	धूमकेतु, चचलकुमारी, देवराज-वच्छराज तेजसिह, पाप का घडा,	५
७१	१४२	तिलक मञ्जरी	१
७२	१५८	भगवान ऋषभदेव	१
७३	१६८	धम्मिल चरित्र	१
७४	१६०	चन्द चरित्र	१
७५	१६०	सिंह-वसन्त, सूरविप्र, उज्झितकुमार, श्रेष्ठी पुत्री पद्मिनी, कूलबालुक, मुञ्ज राजा, समुद्र-दत्त, पक्षिघातक, मूर्ख को तत्त्वदान कैसा ?, बल राजा, मेघरथ-विद्युन्माली, अहीर-अहीरनी, सुव्रतमुनि, पुष्पभूति आचार्य, अनवस्थित चित्त श्रोता, गंगा पाठक	१६
७६	१७६	मुग्धभट्ट, सामदेव-वामदेव, चम्पकमाला, वीरकुमार	४
७७	१३६	राजकुमार महेन्द्र, गन्धप्रिय, मधुप्रिय, दमदन्त राजर्षि, वारिखिल्ल, महेन्द्र राजा, कोकास	७
७८	१५६	अगीतार्थ आचार्य, विजयसेन, वसुतेज-मदनमंजरी, राजा और आचार्य, मूर्ख शिष्य और बन्दर, हुण्डिक चोर, सुरप्रिय कुमार, काम पाल, धर्म राजा	९
७९	१५०	प्रियवद-कनकवती, लक्ष्मीधर सेठ, सर्वांग सुन्दरी, राजकुमार मकरध्वज, कमल सेठ	५
८०	१५२	महानन्दकुमार, वसुदत्त धनदत्त, धन सेठ	३
८१	१५०	तीन मित्र (रात्रि भोजन), मन्त्रिपुत्री भवानी, मृगसुन्दरी, धनमित्र, (सामायिक)	४

भाग	पृष्ठ	कथा नाम	कथा संख्या
८२	१६२	भण्डारी धनद (देशावकाशिक व्रत) देवकुमार प्रेतकुमार (पौषधव्रत) गुणाकर-गुणधर (अतिथि सविभाग व्रत)	३
८३	१६२	पृथ्वीचन्द्र-गुणसागर चरित्र (शंख कलावती चरित्र)	१
८४	१४८	पद्मावती-पद्मसी, वसुधीर कथा, पुरन्दर-कलावती	३
८५	१४६	वसुदेव चरित्र (श्रीकृष्ण के पिता)	१
८६	१४४	भगवान अरिष्टनेमि चरित्र	१
८७	१२०	वासुदेव श्रीकृष्ण चरित्र	१
८८	६७	भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण के प्रेरक प्रसंग	११
८९-९०	३०१	जैन महाभारत (पाण्डव चरित्र)	१
९१	१४३	सुधासिन्धु, चन्द्रकुँवर-चन्द्रकला	२
९२	१२८	चार मित्र, आँसू बन गये मोती, आनन्दसेन और चन्द्रसेन	३
९३	११६	नारी नारायणी, पुण्यपुरुष और पुण्यप्रभा, पाँच मित्र : चार विद्याएँ	३
९४	१२८	मत्री सुमतिचन्द्र, विद्युतमाला एवं भाग्यवती अक्ल की दुकान, धर्मचन्द्र एव लालचन्द्र नारी के दो रूप	५
योग :—१६२३४		— कुल पृष्ठ	योग ५००
९५	(प्रेस मे)	भगवान महावीर चरित्र	१

जैन कथाओ के अतिरिक्त आपश्री के प्रवचन साहित्य मे सैकडो रूपक, ऐतिहासिक कथाएँ व वोधकथाएँ प्रयुक्त हुई हैं। उदाहरण के रूप मे हम यहाँ एक दो कथाएँ दे रहे हैं, जिससे ज्ञात हो सके कि सभी कथाएँ सरस व वोध प्रदान करने वाली हैं।

"अर्धरात्रि का समय था। आकाश मे चपला चमक रही थी, घनघोर घटाएँ छाई हुई थी। वरसात की झडी लगी हुई थी। ठीक ऐसे समय मे

सुनसान मरघट मे एक नारी का करुण क्रन्दन सुनाई देता है। उसके नेत्रो से गंगा-यमुना बरस रही है। वह दुखिया अबला पुकार रही थी—"महाराज ! यही रहते हो ? जरा आओ, अन्तिम समय मे अपने प्यारे पुत्र का मुखड़ा तो देख लो।" अबला रोयी, किन्तु वहाँ उस अरण्यरोदन को सुनता ही कौन था ? इतने मे उसने सामने देखा एक जरा जीर्ण काले-कलूटे शरीर का एक व्यक्ति हाथ मे बास लिये खडा है और बोलता है—"अरी पगली ! क्यो रोती है ? यहाँ राजमहल नही है, कौन आयेगा तुझे देखने ?"

करुण स्वर में तारा ने कहा—'तुम्हारे पास माँ का हृदय होता तो तुम्हे मेरी व्यथा का अनुभव होता। यह मेरे कलेजे का टुकडा आज जमीन पर पडा है। इसके शव को ढकने के लिए आज पूरा कपडा भी नही मिल रहा है। सोने के पालने मे झूलने वाले सूर्यवश के राजकुमार को आज कफन के लिए टुकडा भी नसीब नही है। मेरा हृदय आज वेदना से फटा जा रहा है। इस पुत्र के पिता ध्वजपति सम्राट् को मैं पुकारती हूँ।

सामने खडे व्यक्ति ने पूछा—'कौन हो तुम ? क्या तुम्हारा नाम तारा है ?' 'और आप सूर्यवशी सम्राट् हरिश्चन्द्र है ?' तारा ने प्रतिप्रश्न किया, और तभी बिजली चमकी। दोनो ने एक दूसरे को देखा। वर्षों से बिछुडे हुए दो प्राणी मिले, पर अत्यन्त करुण प्रसग को लेकर। पुत्र की लाश को देखकर हरिश्चन्द्र का हृदय भर आया। किन्तु दूसरे ही क्षण कर्तव्य पालन के लिए हृदय को कठोर कर बोला—'अरी पगली ! यह अब महाराजा हरिश्चन्द्र नही है, यह तो कालिया- चाण्डाल का क्रीतदास है और तुम तारा हो, पर अब महारानी नही हो, ब्राह्मण की क्रीतदासी हो। अब भूल जाओ उन दिनों को। क्या उस दिन की घडे के हाथ लगाने की घटना भूल गई ?' तारा के आँसुओ का बाँध टूट चुका था। वह कहने लगी 'नाथ ! सब्र करो, देखते नही हो प्राणप्यारा पुत्र सामने मरा पडा है।"

हरिश्चन्द्र—"क्या हुआ है इसे ?"

"प्राणनाथ ! आज यह फूल चुनने उद्यान में गया था, तभी एक काले विषधर ने इसे डस लिया। इसके शरीर के अणु-अणु मे जहर फैल गया है।" तारा दिखलाने के लिए आगे बढती है।

"तारा ! यह तो ठीक है। इस समय मैं अपने मालिक के कर्तव्य पर नियुक्त हूँ। मैं कुछ भी रियायत करने को तैयार नही। एक टका लेकर आओ दाह-संस्कार का। जब तक दाह-सस्कार का टका नही दोगी तब तक दाह-सस्कार नही हो सकेगा।"

तारा—नाथ ! यह तो जैसा मेरा पुत्र है, वैसा ही आपका है। क्या आप दाह सस्कार के लिए सामान नही दे सकते ? यहाँ तो काफी लकडियों का ढेर है, कौन देखता है प्राणनाथ !

हरिश्चन्द्र ने गरजते हुए कहा—मैं कर्तव्य से च्युत नही हो सकता। मैं अपने अधिकार की वस्तु छोड सकता हूँ पर यह तो मेरे स्वामी के अधिकार की वस्तु है। लाश जलाने के लिए दो टके देने ही होगे।

नाथ ! एक ही साडी थी, आधो का कफन बनाया और आधी लज्जा निवारण के लिए है, और कुछ नही।

हरिश्चन्द्र—चाहे कुछ भी हो तुम्हे टके चुकाने होगे।

तारा दरख्त की ओट में होकर अपनी साडी खोलकर देते हुए कहती है—लो नाथ, टके की कीमत की तो होगी न ?

कर्तव्य की कठोर अग्नि-परीक्षा मे हरिश्चन्द्र उत्तीर्ण हुए।

× × ×

बंगाल के महान् दार्शनिक सतीशचन्द्र विद्याभूषण की प्रशंसा सुनकर उनकी माता के दर्शन करने के लिए बहुत दूर से एक व्यक्ति आया। उसका विचार था कि जिस माता की वात्सल्यमयी गोद मे पलकर विद्याभूषण का जीवन इतना कलामय बना है, उस रत्नकुक्षिधारिणी जननी के दर्शन कर अपने नयनो को पवित्र करूँ। किन्तु ज्यो ही उसने सीधे-सादे वस्त्रो से तथा हाथो में पीतल के कडो से युक्त विद्याभूषण की माँ को देखा त्यो ही भौचक्का हो गया। उसके मस्तिष्क मे अनेक कल्पनाएँ उत्पन्न होने लगी कि क्या ऐसा महान दार्शनिक अपनी माता की इतनी उपेक्षा कर सकता है ? क्या ये सीधे-सादे वस्त्र और पीतल के कडे माता के अनादर की मुँह बोलती कहानी नहीं है ? किन्तु वार्तालाप करने से उसे अपनी धारणा मिथ्या प्रतीत हुई। माँ और पुत्र मे अगाध स्नेह के दर्शन हुए। तथापि आगन्तुक ने अपने मन के अविश्वास को दूर करने के लिए अत्यन्त नम्रता से पूछा—"माताजी ! आपके शरीर पर साधारण वस्त्र और पीतल के कड़े देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है कि क्या यह आपके लिए, बंगाल के लिए और सतीश बाबू के लिए लज्जा की बात नही है ?"

सतीश बाबू की माँ ने कहा—भैया ! तुम्हारा यह समझना भूल भरा है। हीरे, पन्ने, माणिक, मोती के आभूषणो से आवेष्टित होकर जन-मन में ईर्ष्या की भावना भडकाने में अपना और बंगाल का व सतीश का गौरव अनुभव

नही करती। मनुष्य की सुन्दरता वस्त्रालंकारो से नही अपितु त्याग में, उदारता मे, सात्विकता में है। तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होनी चाहिए कि अभी कुछ समय पूर्व बगाल के दुष्काल ने जन-जीवन मे एक विषमता पैदा कर दी थी, मानव अन्न के दाने-दाने के लिए तरस रहा था, छटपटा रहा था। उस समय सतोश ने जो उदारता दिखलायी और मैंने अपने हाथो से जो गरीब जनता की सहायता की, वही मेरा असली गौरव है। सादगी और संयम से जीवन बिताना ही सच्चे कलाकार का लक्षण है।

सभी कथाएँ दिलचस्प, शिक्षा-प्रधान है। किसी कहानी मे वैराग्य की रसधारा है तो किसी में बाल-क्रोडा एव मातृ-स्नेह का वात्सल्य रस प्रवाहित है तो किसी मे पवित्र चरित्र की शुभ्र तरगें तरंगित हो रही है तो किसी मे नीति कुशलता की ऊर्मियाँ उठ रही है, तो कही पर बुद्धि के चातुर्य की क्रीड़ाओ की लहरें अठखेलियाँ कर रही है, तो कही पर दया-अहिंसा-मानवता के सिद्धान्तो की सरस धाराएँ प्रवाहित हो रही है, कही पर वोररस और कही पर शान्तरस की उछलती हुई कल्लोलें कल्लोल कर रही हैं। आपश्री की कथाओ की भाषा मुहावरेदार और कहावतो से परिपूर्ण हैं। भाषा वहुत ही सरल, सरस व सुन्दर है। जैसे तेलयुक्त धुरी से लगा हुआ चक्र बिना किसी रुकावट के नाचता है; वैसे ही पाठक इन कहानियो के रस मे प्रवाहित हो जाता है। आपश्री ने सभी प्राचीन कथाओ को प्राणवती भाषा मे नवजीवन दिया है। आपके कथा-साहित्य मे पिष्ट-पेषण नही है। आप कथाओ के माध्यम से नया चिन्तन, मौलिक विचार देना चाहते हैं। □□

११ प्रवचन-साहित्य

चोनी भाषा के सुप्रसिद्ध धर्मग्रन्थ ताओ उपनिषद में एक स्थान पर कहा है—"हृदय से निकले हुए शब्द लच्छेदार नही होते और लच्छेदार शब्द कभी विश्वास लायक नही होते।"

हृदय की गहराई से जो वाणी प्रस्फुटित होती है, उसमे सहज स्वाभाविकता होती है, जिस प्रकार कुएँ की गहराई से निकलने वाले जल मे शीतलता भी सहज होती है, उष्मा भी सहज होती है और निर्मलता भी सहज होती है। जो वाणी सहज रूप से व्यक्त होती है, वह प्रभावशाली होती है। जो उपदेश आत्मा से निकलता है, वह आत्मा को स्पर्श करता है। जो केवल जीभ से ही निकलता है, वह अधिक प्रभावशाली नही होता, हृदय को छू नही सकता; चूँकि उसमें चिन्तन, मनन और आचार का बल नही होता।

साधारण व्यक्ति की वाणी वचन है, तो विशिष्ट विचारको की वाणी प्रवचन है। क्योकि उनकी वाणी मे चिन्तन, भावना, विचार और जीवन का दर्शन होता है। वे निरर्थक बकवास नही करते; किन्तु जो भी बोलते हैं उसमें गहरा अर्थ होता है, तीर के समान वेधकता होती है। एतदर्थ ही सघदास गणी ने बृहत्कल्पभाष्य मे कहा है—

गुण सुट्ठियस्स वयण घय परिसित्तुव्व पावओ भवई।
गुणहीणस्स न सोहइ, नेह विहूणो जइ पइवो॥

गुणवान व्यक्ति का वचन घृत सिंचित अग्नि के समान तेजस्वी और पथप्रदर्शक होता है जब कि गुणहीन व्यक्ति का वचन स्नेहरहित दीपक की भाँति निस्तेज और अन्धकार से परिपूर्ण।

श्रद्धेय सद्गुरुदेव जब बोलना प्रारम्भ करते हैं तब समस्त सभा मन्त्र-मुग्ध हो जाती है। श्रोता का मन और मस्तिष्क उनकी प्रवचन-धारा मे प्रवाहित होने लगता है। आपकी वाणी में हास्यरस, करुणरस, वीररस और शान्तरस आदि सभी रसो की अभिव्यक्ति सहज रूप से होती है। आपको किंचित् मात्र भी प्रयत्न करने की आवश्यकता नही होती। वक्तृत्व कला आपका सहज स्वभाव है। आपकी वाणी में मधुरता, सहज सुन्दरता है।

भावो की लडी, भाषा की झड़ी, और तर्को की कडी का ऐसा सुमेल होता है कि श्रोता झूम उठते है। आत्मा, परमात्मा, सम्यग्दर्शन, स्याद्वाद, जैसे दार्शनिक विषयो को भी सहज रूप से प्रस्तुत करते है। श्रोता ऊबता नही, थकता नही। आपका प्रवचन सुलझा हुआ, अध्ययनपूर्ण और सरस होता है। इसीलिए लोग आपको वाणी का जादूगर कहते है। किस समय क्या बोलना, कैसे बोलना और कितना बोलना—यह आपको ध्यान है। आपके प्रवचनो मे नदी की भाँति गति है और अग्नि ज्वाला की तरह उसमे आचार-विचार का तेज व प्रकाश है। आपकी मधुर व जादू भरी वाणी से सामान्य जनता ही नही अपितु साक्षर व्यक्ति भी पूर्ण रूप से प्रभावित होते हैं। आप जहाँ भी जाते है, वहाँ की जनभाषा मे प्रवचन करते है। आपका प्रवचन साहित्य हिन्दी, गुजराती, और राजस्थानी इन तीन भाषाओ मे प्रकाशित हुआ है। भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपमे विचारो को अभिव्यक्त करने की कला गजब की है। आपकी वाणी में ओज है, तेज है, और शान्ति है। वस्तुतः आप वाणी के कलाकार हैं।

वाणी मानव की अनमोल सम्पत्ति है, अनुपम निधि है। यदि मानव के पास वाणी की अमूल्य सम्पत्ति न होती तो वह पशु और पक्षियो की तरह अपने विमल विचारो को मूर्त रूप नहीं दे सकता था। साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला, और विज्ञान का निर्माण नही कर सकता था। वैदिक ऋषियो ने इसी कारण वाणी को सरस्वती कहा है। "वाचा सरस्वती", "जिह्वाग्रे सरस्वती" कहकर वाणी के महत्त्व पर प्रकाश डाला है।

हिटलर का कहना था कि सभी युगान्तरकारी क्रान्तियो का जन्म लिखित शब्दो से नही अपितु ध्वनित शब्दो से हुआ है। वाक्बल से जो कार्य हो सकता है वह तलवार के बल से नही हो सकता। इतिहास साक्षी है—भगवान महावीर, तथागत बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, अरस्तू, मार्टिन लूथर, अब्राहम लिंकन, क्रामवेल, लार्ज वाशिंगटन, नेपोलियन, चर्चिल, हिटलर, लेनिन, स्टालिन, शंकराचार्य, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रामतीर्थ, महात्मा गान्धी, सुभाष बोस आदि ने अपने ओजस्वी भाषणो द्वारा जो धर्म, समाज और राजनीतिक क्षेत्र मे क्रान्ति का शख फूंका वह किससे छिपा हुआ है।

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य के प्रवचनो मे व्यर्थ के काल्पनिक आदर्शों की गगन विहारी उडान नही है और न बौद्धिक विलास है और न धर्म-सम्प्रदाय-राष्ट्र के प्रति व्यक्तिगत या समूहगत आक्षेप है। किन्तु आपके प्रवचन जीवन-

स्पर्शी होते हैं। जीवन को उन्नत बनाने वाले हैं। जीवन की सही मुस्कान को खिलाने वाले होते हैं। दिल और दिमाग को तरो-ताजा बनाने वाले होते हैं। समाज की अभद्रता और विषमता को मिटाने वाले होते हैं। प्राचीनता में नवीनता का रग भरने वाले होते है। सघ और राष्ट्र की स्थिति को ज्योतिर्मय बनाने वाले होते है। आपके प्रवचनों में त्याग और वैराग्य का अखण्ड तेज, अनुभव का अभिनव आलोक, आत्मसाधना का गम्भीर स्वर और मानवीय सद्गुणो के प्रतिष्ठान की मोहक सौरभ महकती है। आपका उपदेश उपरिदेश से नही अन्तर्देश से आविर्भूत होता है।

सद्गुरुदेव के प्रवचन साहित्य की अनेकानेक विशेषताएँ हैं। उन सभी विशेषताओ को अकित करना सम्भव नही। क्या कभी विराट् समुद्र भी नन्ही सी अजलि में भरा जा सकता है? श्रद्धेय सद्गुरुवर्य की प्रवचन शैली के उद्धरण मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ जिससे प्रबुद्ध पाठको को परिज्ञात हो सके कि सद्गुरुदेव के प्रवचन कितने मार्मिक और हृदय-स्पर्शी होते है। भारतवर्ष का महत्त्व भौतिक वैभव के कारण नही किन्तु धर्म के कारण है। इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए आपश्री ने कहा—

"भारतवर्ष अतीतकाल से ही जन-जन के मन का आकर्षण केन्द्र रहा है। किन्तु उस आकर्षण का कारण क्या अनन्त आकाश को नापने वाली हिमाच्छादित हिमालय को उच्च चोटियाँ है? अथवा उत्ताल तरंगे और मेघ गम्भीर ध्वनि से मानव मन को आल्हादित करने वाला समुद्र का गर्जन और तर्जन है? या हँसती और मुस्कराती हुई प्रकृति नटी की सौन्दर्य सुषमा है? या रेगिस्तान को चाँदी के समान चमकती हुई रेती है? या कल-कल छल-छल बहती हुई सरिता की सरस धाराएँ हैं? या सोने-चाँदी, हीरे जवाहरात की खानें हैं? अथवा पेट्रोल या तेल के स्रोत हैं? यह एक ज्वलन्त प्रश्न है जिसका उत्तर आपको देना है। यदि आपने इस बाह्य वैभव से ही भारतवर्ष का मूल्याकन किया तो मुझे कहना चाहिए कि आपने भारतवर्ष की आत्मा को नही पहचाना, आपने केवल शरीर का या भौतिक पदार्थों का ही अवलोकन किया है और उसे ही महत्त्व दिया है।"

जीवन में आचार और विचार की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आपने अपने प्रवचन मे कहा है—

"बिजली के दो तार होते है; एक निगेटिव और दूसरा पॉजिटिव। जब तक ये दोनो तार पृथक्-पृथक् रहते हैं, तब तक आपका कमरा मधुर

प्रकाश से प्रकाशित नही हो सकता, पंखा आपको हवा नही दे सकता, रेडियो पर राग-रागिनी थिरक नही सकती, हीटर पानी गरम नही कर सकता; चाहे आप कितनी ही बार बटन दबाएँ। किन्तु ये दोनो तार मिले हुए होते है तो बटन दबाते ही, प्रकाश हँसने लगेगा, हीटर पानी उबाल देगा। इसी प्रकार साधक जीवन की स्थिति है। यदि उसके जीवन मे आचार और विचार के दोनो तार मिले हुए नही है तो आध्यात्मिक प्रकाश फैल नही सकता, उत्क्रान्ति की हवा मिल नही सकती, विश्व के आध्यात्मिक संगीत की स्वर-लहरी सुनाई नही दे सकती और साधना की गर्मी आ नही सकती।"

विनय का महत्त्व बताते हुए आपने कहा—"विनय वह लौह चुम्वक है, जो सभी सद्गुणो को अपनी ओर आकर्षित करता है। आप जानते है सोना भी धातु है, और लोहा भी धातु है, मगर हीरे-पन्ने माणक-मोती को जडना हो तो आप सोने मे ही क्यो मढते है, लोहे मे क्यो नही ? कारण स्पष्ट है कि सोने मे नम्रता है, लचक है। सोने को जितना ज्यादा पीटा जाता है उतनी ही ज्यादा उसमे नम्रता आती है। नम्र और निर्मल होने पर सोना निर्मल कहलाता है। वैसे ही नम्र और निर्मल होने पर मनुष्य पवित्र कहलाता है। सोना नम्रता के कारण जब हीरो से जड दिया जाता है तो उसकी कीमत लाखो की होती है। यदि सोना भी लोहे की तरह कठोर होता, वह अपने आप मे हीरे को जगह नही देता तो उसकी कीमत लाखो की नही हो सकती थी। जीवन को विनम्र बनाने का अर्थ है—सोना बनाना। और जीवन सोना बन जाता है तो उसमे क्षमा, दया, सत्य, प्रेम, आदि के जगमगाते हीरे जड़ जाते हैं, वह जीवन बहुमूल्य बन जाता है और बहुमूल्य जीवन जहाँ भी जाता है, वहाँ सुख और शान्ति की बंशी वजने लगती है।"

मानव और मानवता का विश्लेषण करते हुए आपश्री ने कहा—

"मानव और मानवता मे उतना ही अन्तर है, जितना दूध और दूध की बोतल मे। यदि आपको दूध पीना है तो किसी न किसी बोतल या पात्र मे होगा, तभी पी पायेंगे। दूध की खाली बोतल के रूप मे मानव शरीर है। अगर मानवता रूपी दूध उसमे नही है, तो बेकार है। आपने एक बहुत अच्छी दुकान मौके पर किराये से ली है। उसमे आलमारियाँ, शोकेस, टेबल, कुर्सियाँ आदि सजा दी है, ज्वेलरी हाउस की साइन बोर्ड भी आपने लगा दिया है, परन्तु यदि उस दुकान में माल कुछ भी नही है, ग्राहक आता है तो खाली लौटकर चला जाता है तो वह दुकान एक धोखे की टट्टी है। उससे कोई लाभ नही है—दूकानदार को, न ग्राहक को। इसी प्रकार यदि

आपने मानव-शरीर पा लिया है, उसे खूब मोटा-ताजा भी बना लिया है; विविध अलंकारो से उसे विभूषित भी कर लिया है; परन्तु कोई भी मानव आपके सम्पर्क मे आता है, उसे आप घृणा की दृष्टि से देखते है; उसका तिरस्कार करते है; अपनी सेठाई के अभिमान में आकर उसको दुत्कार देते हैं; पास में शक्ति होते हुए भी किसी को दुखित, पीडित और कराहते हुए देख कर भी आगे टरक जाते हैं; आपके हृदय मे मानव को देखकर प्रसन्नता की लहरे नही उठती है; आपका हृदय मनुष्य के बाह्य जाति-पाँति या सम्प्रदायो के लेबलो को देखकर वही ठिठक जाता है, तो कहना चाहिए कि आपके यहाँ भी "ऊँची दुकान फीकी पकवान" वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है। आप मानव तो हैं, पर आप में मानवता नही है। मानव शरीर रूपी दुकान को आपने विविध फर्नीचरो से सजा ली है, किन्तु मानवता रूपी माल आपकी दुकान में नही है।"

साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए गुरुदेवश्री ने कहा है—

"साहित्य महापुरुषो के विचारो का अक्षय कोश है। संसार रूपी रोग को नष्ट करने के लिए अद्भुत औषधि है। सत्य और सौन्दर्य से भरा हुआ मानो स्टीमर है। वह युवावस्था में मार्गदर्शक है और वृद्धावस्था में आनन्द-दायक है। वह एक अद्भुत शिक्षक है। शिक्षक चाबुक मारता हैं, वह कठोर शब्दो मे फटकारता है और पैसे भी लेता है; पर यह न चाबुक मारता है, न कठोर शब्दों में फटकारता है और न पैसे ही लेता है; किन्तु शिक्षक की तरह उपदेश देता है। वह युवावस्था में भी वृद्ध जैसा अनुभवी बना देता है। एतदर्थ ही आस्टिन फिलिप्स ने कहा था—"कपड़े भले ही पुराने पहनो पर पुस्तकें नवीन-नवीन खरीदो।"

आपश्री की राजस्थानी भाषा मे तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—(१) मिनख पणा रो मोल (२) रामराज, (३) संस्कृति रा सुर। आपकी राजस्थानी भाषा मुहावरेदार और हृदयस्पर्शी है। आपने राम-राज्य के सम्बन्ध में लिखा है—

"उण दिन देश मे सोना रो सूरज उगौ हो, कारण के एक हजार वरसाँ री गुलामी भुगतनै देस सुतंतर सरबततर हुओ हो। इण सुतन्तरता रै वास्ते भारत रा सपूतां सामी छाती गोलियाँ झेली। मांतात्रा आपरा व्हाला डीकरां नै फाँसी पर झूलता देख्या। जलियावाला बाग में जो अत्याचार हुओ, उणनै देखनै मिनखपणो कुरलाय उठयौ। ओ दानवता रो नागौ नाच हो पण

गाधीजी री विचार रूपी आँधी परदेसी राजा नै खतम कर दियो अर इतिहास प्रसिद्ध लालकिला पर यूनियन जेक री जगै समता अर साति रो प्रतीक तिरंगो असोक चक्र लहरायौ। भारतवासियाँ रै हिवडा मे आणन्द री छोला उछलण लागी, मन रा मोर नाचण लाग्या, हिवडा रूपी कमल खिलग्या। जीवण रा कण-कण में नवी चेतणा आई अर जै जै कार री आवाज सूँ आभौ गूँजण लागौ। बालक-बूढाँ सगला रै चेरा पर खुसी नाचण लागी।"

सयम की महत्ता का विश्लेषण करते हुए आपने प्रत्यक्ष अनुभूतिपूर्ण उदाहरण देते हुए कहा—

"आप संकर रा मंदिर मे जावती बखत कानी काछवा री मूरत देखी व्हैला। इण मूरत रौ अर्थ औ है के जो थे संकर रा परतख दरसण करणा चावौ तो पैला काछबा रै ज्यूँ पोता री इन्द्रियाँ पर काबू राखौ। उठाताई काछब धर्म धारण नी करौला, संकर (सुख) रा दरसण नो व्हैला।"

प्रामाणिकता के बिना साधना का महत्त्व नही, जीवन मे प्रामाणिकता का क्या महत्त्व है इसे गुरुदेवश्री ने इस रूप मे व्यक्त किया है—

"आपणौ भारत आध्यात्मिक मुल्क गिणी जै। अठै हजारा लाखां मिनखां आध्यात्मिकता री धूणी धुकाई है, आध्यात्मिकता रा उपदेस दिया है अर आध्यात्मिकता रा गीत गाया है। दरसण सास्त्र अर न्याय सास्त्र ए सगलाई सास्त्र इण वास्ते इज वण्यौडा है के वे मिनख जै पोतरा धे कांनी ले जावे। संगला शास्त्रामे मानखा रो चरित्र उण रै जीवन पायौ गिणी जै। 'जो मिनख रे जीवन मे चरित्र रूपी पायौ इज नी हवे तो पछै धार्मिक क्रियावाँ लाँबा-लाँबा पूजा पाठ धार्मिक ग्रन्थाँ रो अध्ययन, लच्छादार भासण अर प्रवचन सब बेकार है। बिना रागरा मकान जिसा है।"

आपश्री के प्रवचनो की कुल तीन पुस्तकें गुजराती भाषा मे प्रकाशित हुई हैं—जिन्दगीनो आनन्द, जीवन नो झकार और सफल जीवन। जीवन कला पर चिन्तन करते हुए आपने कहा—

"कला नो उद्देश्य मानव जीवन नै विकृत बनावानो न थी, के प्रकृतज राखवानो न थी परन्तु तेने सस्कृत बनाववानो छे। भोग अने विलासना साधनो अने प्रसाधनो ना अर्थ मां कला शब्द नो प्रयोग करवो ते कला नो मश्करी करवा जेवु छे। आ कलानी विकृति छे, कला नो आभास छे। साची कला न थी। आजकल सिनेमा की जाहेर खबरो ना चित्रकारो विलास भवनो माँ नग्न मूर्तियो घरनारा मूर्तिकारो श्रीमन्तो ने रीझावा माटे नृत्य करनारी वेश्याओ, रेडियो अने सिनेमा स्टुडियो माँ पैसा पैसा माटे गावानी अभिनय

करता संगीतज्ञों अने केटलाक गंदी राजरमतनी राणी ना दलालां करता कवियों कला ना व्यभिचारियो छे। आवा अधिकारी ना हाथ माँ जवाना सीधे न कलानी आटली बधी बदनामी थई छे। चाँदी ना थोड़ा सिक्कानों बदला माँ कलानु वेचाण न थइ शके। साचो कला पारखु कलाकार पोतानी कला थी समाज ने सत्य नी सिद्धान्त नी अने कल्याण नी अनुभूति करावे छे।"

सत्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए आपने कहा—

"सत्य एक पारसमणि छे। तेनो स्पर्श थताज मानव जीवन रूपी लोढुं सोनुँ बनी ने चमकवा लागे छे। जेणे सत्य नो स्वीकार कर्यो ते पूजनीय सन्माननीय अने सन्त शिरोमणि बनो गया।"

इस प्रकार श्रद्धेय सद्गुरुवर्य के प्रवचन जीवन को प्रेरणा देने वाले और अभिनव ज्योति को जागृत करने वाले है। □□

१२ चिन्तन-साहित्य

जितनी अनुभूति तीव्र होगी उतनी ही अभिव्यक्ति स्पष्ट होगी और उसकी आभा देश व काल की संकुचित सीमा को पार करके सर्वदा एक समान रहने वाली है। यही कारण है कि सूक्ति साहित्य मोती के समान लघु होने पर भी मूल्यवान् है। संक्षिप्तता को सच्ची सिद्धता है। गुरुदेवश्री की अभि-व्यंजना बडी मार्मिक और प्रभावशाली है। उनका शब्द-चयन और वाक्य निर्माण इतना आकर्षक है कि पाठक पढते-पढते झूमने लगता है। सद्‌गुरुदेव श्री का सूक्तियो का सकलन पृथक रूप से प्रकाशित नही हुआ है। किन्तु आपका लिखा हुआ सूक्ति साहित्य काफी मात्रा में है, जिसकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो सकती हैं। संक्षेप मे उदाहरण रूप में आपकी सूक्तियाँ और उक्तियाँ इस प्रकार हैं।

अज्ञ और विज्ञ—जो सब कुछ जान करके भी अपने आपको नही जानता वह अज्ञ है; और जो अन्य को जानने से पूर्व अपने आपको सम्यक् प्रकार से जानता है वह विज्ञ है।

धर्म और सम्प्रदाय—धर्म एक प्रवाह है तो सम्प्रदाय उस धर्मरूपी प्रवाह का बाँध है। बाँध के मधुर नीर से सिंचाई होती है और खेती लहलहाने लगती है और उस पानी से विद्युत तैयार होती है और विश्व उसके आलोक से जगमगाने लगता है, वैसे सम्प्रदाय रूपी बाँध से भी धर्म की सिंचाई होती है, ज्ञान का प्रकाश फैलता है। यदि सम्प्रदाय मे संकीर्णता, स्वार्थता, कट्टरता का जहर मिल जाय तो वह लाभ के स्थान पर हानि करेगा।

सहस्राक्ष—मानव दूसरे की भूल को देखने मे सहस्राक्ष है, पर अपनी भूल को देखने मे एकाक्ष भी नही है। उस एकाक्ष को भी वह मूँद लेता है—यही सबसे बडी विडम्बना है।

सुख का कारण—जिसकी चाह नही उस राह पर मानव चल रहा है; पर जिसकी चाह है उस राह की ओर कदम नही बढा रहा है। चाह सुख की है किन्तु कार्य दु:ख के कर रहा है।

सुख का कारण अभाव नही, अतिभाव भी नही, किन्तु स्वभाव है।

महान् कलाकार—वह महान् कलाकार है जो नीरस जीवन मे भी सर-

सता के सुमधुर सुमन खिलाता है और दुःख की काली कजरारी निशा में भी सुख की शुभ्र चाँदनी के दर्शन करता है।

श्रद्धा और तर्क—श्रद्धा और तर्क जीवन के दो पहलू हैं। परिपूर्ण जीवन के लिए दोनो की अपेक्षा है। श्रद्धारहित जीवन अभिशाप है तो तर्करहित श्रद्धा भी बेकार है। वह सम्यक्श्रद्धा नही, अन्ध श्रद्धा है; शिव नही शव है।

श्रद्धा में अर्पण है तो तर्क मे प्रश्नचिन्ह का अकन है और है कसौटी का प्रस्तुतीकरण। श्रद्धा पलकें मूँदने की बात कहती है तो तर्क यथार्थता की कसौटी पर कसने की बात कहता है। न कसौटी को भूलना उचित है और न अर्पण को विसारना ही। दोनों का मूल्य है। घिसते-घिसते चन्दन में भी ऊष्मा पैदा होती है। केवल अर्पण ही अर्पण हो तो समर्पण का आनन्द पीछे रह जायगा।

विचार और आचार—यदि विचार स्फटिक के समान निर्मल है तो आचार भी निर्मल होगा। बिना विमल विचार के आचार निर्मल नही हो सकता। विचार-क्रान्ति की नीव पर ही आचार-क्रान्ति का भव्य प्रासाद खडा होता है।

अभिव्यक्ति—वह शक्ति किस काम की, जिसकी अभिव्यक्ति न हो। सूर्य की चमचमाती किरणों से झुलसते हुए व्यक्ति को वही बीज शान्ति प्रदान कर सकता है जो वृक्ष के रूप मे अभिव्यक्त हो चुका है।

रमणीय—जो रमणीय है वह शिव भी अवश्य होगा। जो रमणीय है किन्तु कल्याणकारी नही है; वस्तुतः वह रमणीय नही है। वह तो किंपाक फल के सदृश है।

विरोध—विरोध तो ज्योति से पूर्व होने वाला धुआँ है। वह कुछ क्षणो के लिए लोगो के नेत्रो को धूमिल बना दे; किन्तु अन्त मे ज्योति ही रहती है। जिन्हे ज्योति की आशा है, वे धुएँ को देखकर निराश नही होते।

पाप की कल्पना—अफीम के फूल की तरह पाप की कल्पना प्रारम्भ मे सुन्दर और चित्ताकर्षक है; किन्तु अन्त मे वही कल्पना सर्प के आलिंगन की तरह नष्ट कर देती है।

उपदेश—उपदेश बर्फ के समान है। वह जितना धीरे-धीरे दिया जायगा, उतना ही स्थायी, गहरा और मन मे प्रवेश करने वाला होगा।

मौन—मौन वीर अर्जुन के अचूक वाण की तरह है जिसका वार कभी भी खाली नही जाता, जो कार्य वोलने से सम्पन्न नही हो सकता, वह

१३ उपसंहार

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य विश्व की जगमगाती एक महान् विभूति है, मनीषी और मनस्वी सन्त हैं। आपका जीवन सहस्रदल कमल के समान सुवासित व रमणीय है, जो प्रतिपल-प्रतिक्षण अपने मधुर सौरभ कोष लुटाता रहता है, तेजस्वी सूर्य के समान दिव्य आलोक प्रदान करता है और गगा के निर्मल प्रवाह की तरह सरसता का संचार करता है, वह जनजीवन के लिए उपकारक एव अत्यन्त हितकारक है, इसीलिए वह हम सब के लिए वन्दनीय, वर्णनीय और अर्चनीय है।

सद्गुरुवर्य का विराट जीवन, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की परमपावन त्रिपथगा है। जो भी उनके निकट सम्पर्क मे आता है वह अनिर्वचनीय आनन्द, तृप्ति और मानसिक विश्रान्ति का अनुभव करता है। वस्तुतः आपका जीवन रमणीयता का अक्षय कोष है। दिन भर कर्मयोगी की तरह कार्य करते रहने पर भी शरीर पर थकान, मुख पर म्लानता, और मानसिक विक्षोभ की एक रेखा भी आपके चेहरे पर नही दिखायी देगी। प्रत्येक क्षण वही तत्परता, वही लीनता, वही जीवन और जगत के गम्भीर रहस्यो का अन्वेषण करती हुई भाव-मुद्रा, वही मधुर मुस्कराहट और वही निर्माण की छटपटाहट। वे स्वयं समय की पकड़ मे नही आते; किन्तु समय तब तक उनकी पकड से छूट नही सकता, जव तक वे उसके छलछलाते रस को अच्छी तरह निचोड नही लेते। कविकुलगुरु कालिदास ने रमणीयता की जो परिभाषा की है वह आपके जीवन मे जीवित और जागृत दिखाई देती है—क्षणे-क्षणेयन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

आपश्री ने अपने जीवन के वहुमूल्य बहत्तर वासन्ती बहारो को पूर्णरूप से जन-जन के जीवनोत्कर्ष की मगलमय भावना हेतु समर्पित किया और आज भी उसी मस्ती मे अनन्त सौरभ, अनन्त आनन्द और अनन्त प्रकाश को कुबेर की तरह वांट रहे हैं। उस विराट् व्यक्तित्व को यह जड़ लेखनी कैसे अभिव्यक्त कर सकती है?

मैंने जो गुरुदेवश्री का जीवन-वृत्त लिखा है वह भावुकता के प्रवाह में प्रवाहित होकर नहीं लिखा है, किन्तु गहराई से उनकी अगाधता को देखा है। श्रद्धा का रस तो उसमें होगा ही किन्तु श्रद्धा के साथ विवेक व विचार नेत्र भी पूर्ण रूप से खुले रहे है और पद-पद पर लेखनी विचार रस में डूबकर ही आगे बढी है। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि अगणित सूर्य अपनी हजारो किरणो के साथ चमक रहे है, विश्व मैत्री के अगणित कलश एक साथ छलक रहे हैं; और उनके अन्तर्हृदय से स्नेह सद्भावना व करुणा की न जाने कितनी ही गंगा-यमुना और सरस्वतियाँ बह रही है। अत: उसे किसी सीमा में बाँधना कठिन ही नही, कठिनतर है। आपश्री का निर्मल व्यक्तित्व "सत्य शिवं सुन्दरम्" की अपूर्व समन्विति है। आपके प्रत्येक चरण मे मानवता की मंगल मुस्कराहट है, और प्रत्येक शब्द में समन्वय का अनहदनाद है, और प्रत्येक चिन्तन में दिव्य आलोक है और प्रत्येक श्वासोच्छ्वास में अनन्त विश्वास है।

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य,का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुमुखी है। उत्कृष्ट साधना से जहाँ आपने अपने अन्तरंग को विकसित किया है वहाँ व्यवहार कुशलता से और स्नेह सद्भावना से जन-जन के अन्तर्मानस को जीता है। आपश्री का जीवन सरोवर नही; किन्तु भागीरथी की बहती धारा है। आपके प्रत्येक श्वास में प्रगति का स्वर प्रस्फुटित होता है, जडता और स्थितिपालकता आपको किंचित् भी पसन्द नही है। आपके जीवन में ऋतुराज वसन्त की तरह सुन्दरता और सरसता है। सदा अभिनव कल्पना और नये उत्साह के सरस सुमन खिलते रहते हैं। अतीत के प्रति अपार आस्था होने पर भी आपके नेत्रो में भविष्य का विश्वास और उल्लास है। आप मानवता के मसीहा है, युगपुरुष हैं। आपका जीवन 'अणोरणीयान् महतो महीयान्" है। आप असाधारण प्रतिभासम्पन्न, अतुल आत्मबली, कुशल अनुशासक, अनुत्तर आचार-निधि, और साहित्य जगत के उज्ज्वल नक्षत्र है।

मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ, मुझे गुरुदेवश्री के जीवन को अत्यन्त निकटता से देखने का अवसर मिला। सन् १६४० मे मैंने आपश्री के चरणों में आर्हती दीक्षा ग्रहण की तब से निरन्तर मैं आपश्री के साथ रहा हूँ। मैंने आपश्री को देखा है, परखा है, जैसे सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की शीतलता और जलधि का गाम्भीर्य प्रमाणित करने की आवश्यकता नही; वैसे ही आपके जीवन को निखारने की आवश्यकता नही, वह स्वयं निखरित है।

कार्य मौन से हो जाता है। मौन मे शब्दो की अपेक्षा अधिक शक्ति है और वह सर्वोत्तम भाषण है।

अभिमान और विनय—अभिमान का प्रकाश विजली की चमक की तरह है जो एक क्षण चमकती है और विनय का प्रकाश चमचमाते हुए सूर्य की तरह है जो दीर्घकाल तक चमकता है।

परीक्षा—नन्ही-नन्ही बातो से ही हमारे हृदय की विराटता और सकुचितता की परीक्षा होती है।

आचरण—आचरण के बिना बौद्धिक ज्ञान निर्जीव शरीर की भाँति है, म्यूजियम मे मसाला भरकर रखा हुआ सुरक्षित शरीर भले ही देखने मे सुन्दर लगे किन्तु उसमे प्रेरणा देने की शक्ति नही है।

बुद्धि की वृद्धि—केवल बुद्धि की वृद्धि से कभी-कभी मानव का हृदय शून्य हो जाता है। उसमे से प्रेम, दया आदि सद्गुण उसी तरह नष्ट हो जाते है, जैसे प्रखर ताप से हरियाली।

वाचाल—जिस वृक्ष मे पत्ते बहुत अधिक होते है, उसमें फल बहुत ही कम आते हैं; जो अधिक वाचाल है, वह कार्य कम करता है।

धन—चन्द्रमा मे कलक है; किन्तु किरणो की तेजस्विता से कलंक छिप जाता है, वैसे ही धनवान् के दोष भी धन की चमक-दमक से दिखाई नही देते।

आलस्य—किसी भी वस्तु का उपयोग किया जाय वह उतनी खराब नही होती, जितनी खराब जग लगने से, मानव भी कार्य करने से नही, किन्तु आलस्य के जग से खराब होता है।

मन—मन सफेद वस्त्र की तरह है, उसे जिस रग मे रगना चाहो उसी रंग में रगा जायेगा। यदि तुम्हारा चरित्र दर्पण के समान निर्मल है तो दूसरे भी उसमे अपना प्रतिबिम्ब देख सकते है।

प्रतिज्ञा—जिसने प्रतिज्ञा ग्रहण नही की है, वह बिना पतवार के नौका के सदृश है, जो इधर से उधर टकराता है और अन्त मे विनष्ट हो जाता है। प्रतिज्ञा ग्रहण करना कमजोरी का नही, बल का प्रतीक है।

सत्य—सत्य एक विराट् वृक्ष के समान है, उसकी हम जितनी अधिक सेवा करेंगे, उससे उतने ही मधुर फल प्राप्त होगे।

आँख—आँख वह दर्पण है, जिससे अन्तर्हृदय की निर्मलता और पवित्रता को देखा जा सकता है। यदि हृदय मे वासना की आंधी आ रही है तो वह आँख मे प्रकट हो जायेगी।

परिश्रम—परिश्रम चतुर्मुख ब्रह्मा की तरह विश्व का निर्माण करने वाला है और चतुर्भुज विष्णु की तरह सभी का पालन करने वाला भी है। और त्रिनेत्रधारी शिवशंकर की तरह आलस्य रूपी कामदेव को नष्ट करने वाला है।

मानव-जीवन—मानव का जीवन मोजाइक फर्श की तरह है। उसे जितना अधिक घिसा जायेगा उतना ही अधिक वह चमकेगा।

महानता—यदि कोई ऊँचे आसन पर बैठने से महान् बन सकता हो तो मन्दिर की ध्वजा पर बैठने वाला कौआ और चील भी महान् बन जायेंगे। महानता सद्‌गुणो से आती है; ऊँचे बैठने से नही।

आपश्री की साहित्य रचना के दो प्रयोजन स्पष्ट परिज्ञात होते है—स्वान्तःसुखाय और सर्वजनहिताय। आपश्री के सम्पूर्ण साहित्य की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। दर्शन और आध्यात्मिक विचारो का सुन्दर सगम है। आपके साहित्य में सूक्तियो और उक्तियो की प्रचुरता है जो अत्यन्त रोचक और भावप्रवण है, जिसमे अर्थ गाम्भीर्य कूट-कूटकर भरा हुआ है।

"धर्म का कल्पवृक्ष : जीवन के आँगन मे"

"दान : एक समीक्षात्मक अध्ययन"

"श्रावक धर्म दर्शन"

"ओकार : एक अनुचिन्तन"

"ब्रह्मचर्य विज्ञान"

आदि ग्रन्थो मे संग्रहीत आपके विचार इस बात के ज्वलन्त प्रमाण है।

आपका साहित्य आशा, विश्वास, जागरण और प्रेरणा की अदम्य शक्ति का संचार करने वाला है। आपके साहित्य के अध्ययन से निराशा और कुण्ठा तिरोहित हो जाती है और जीवन-निर्माण की महान् शक्ति प्राप्त होती है। आपश्री ने भारतीय संस्कृति की विभिन्न भाव-धाराओ पर गहन चिन्तन कर उनमें से नवनीत निकाला है। आपका चिन्तन आकाश-कुसुम की तरह नही; मानवता प्राप्त करने का दिव्य साधन है। आपने गद्य और पद्य दोनो में विपुल साहित्य का निर्माण किया है, जिसमे कबीर और आनन्दघन का फक्कडपन है, सूर और तुलसी की सरसता है और रवीन्द्र और अरविन्द की दार्शनिक गम्भीरता है। □□

आपके तपःपूत व्यक्तित्व और सर्जनात्मक कृतित्व की मेरे हृदय पर अमिट छाप है।

श्रद्धेय सद्गुरुवर्य का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा रहा है। यह अत्यन्त आल्हाद का विषय है। इस सुनहरे अवसर पर अगाध श्रद्धा के सुवासित सुमनो की लघु भेंट उनके श्रीचरणो मे समर्पित करते हुए मैं अपने आप को धन्य अनुभव कर रहा हूँ। हमारे हृदय की यही मगलमय भावना है, आप दीर्घायु हो, शतायु हो और हम आपके कुशल नेतृत्व मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र मे निरन्तर बढते रहे। □□